बृहत्तर भारत का निर्माता

चंद्रगुप्त मौर्य

बृहत्तर भारत का निर्माता

चंद्रगुप्त मौर्य

दिलीप कुमार लाल

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

चंद्र गुप्त मौर्य

लगभग 2,500 वर्ष पूर्व भारत छोटे-छोटे गणराज्यों और जनपदों में बँटा हुआ था। आंतरिक कलह और परस्पर दुश्मनी के कारण पूरा देश बिखरता जा रहा था। शासक ऐयाशी करने और धन लुटाने में निमग्न थे, अपनी सारी जिम्मेदारियाँ भूल चुके थे। कुछ महत्त्वाकांक्षी राजा सीमा-विस्तार के अभियान में इतने जुटे थे कि प्रजा में असंतोष पनप रहा था। नैतिकता के नाम पर राजाओं का अहंकार विकास की सीढ़ियों को दीमक की तरह चाट रहा था। देश का अस्तित्व खतरे में था। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, कला आदि क्षेत्र अस्थिरता के शिकार थे। ऐसे में चाणक्य जैसे महान् दार्शनिक, विद्वान्, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री और राष्ट्र-हितैषी के रूप में महान् गुरु और चंद्रगुप्त* जैसे महान् सम्राट् का उदय हुआ। उन्हीं दिनों विदेशी शक्तियाँ भारत की ओर लगातार कदम बढ़ा रही थीं। लेकिन इन विषम परिस्थितियों में चाणक्य की दूरदर्शिता काम आई और चंद्रगुप्त मौर्य ने संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर नवीन भारत कि स्थापना कि चंद्रगुप्त के पिता, वंश, जन्म-स्थान आदि को लेकर इतिहासकारों और विद्वानों में मतभेद है। फिर भी, माना जाता है कि चंद्रगुप्त के पिता पिप्पलिवन गणराज्य के प्रमुख थे। वे मोरिय वंश के थे। मोरिय वंश से संबंध होने के कारण चंद्रगुप्त के नाम के साथ 'मौर्य' जुड़ा।

जैन ग्रंथों के अनुसार, 'मोरिय' शाक्यों की एक शाखा थी। जब कौसलों के राजकुमार विरूधक ने शाक्यों पर आक्रमण किया था, मोरिय अपना मूल स्थान छोड़कर पिप्पलिवन में बस गए थे। किंवदंती है कि इस स्थान पर प्रचुर संख्या में मोर (पक्षी) पाए जाने के कारण उस वंश का नाम 'मोरिय' पड़ा था। पिप्पलिवन मगध का सीमावर्ती गणराज्य था। मगध उन दिनों सबसे शक्तिशाली राज्य था। वहाँ नंद वंश के राजा महापद्मनंद का शासन था।

महापद्मनंद महत्त्वाकांक्षी राजा था। वह सीमावर्ती गणराज्यों को अपने राज्य में मिलाकर मगध का विस्तार कर रहा था। उन्हीं दिनों महापद्मनंद ने पिप्पलिवन गणराज्य के प्रमुख की हत्या कर पिप्पलिवन को अपने राज्य (मगध) में मिला लिया था। जब महापद्म ने पिप्पलिवन पर आक्रमण किया था, उस समय चंद्रगुप्त अपनी माँ मूरा देवी के गर्भ में था। मूरा किसी तरह वहाँ से जान बचाकर भाग निकली और अपने पिता के घर पाटलिपुत्र आ गई। मूरा के पिता मोर-पालक थे। जैन और बौद्ध गं रथों से प्रमाण मिलता है कि पाटलिपुत्र में चंद्रगुप्त का जन्म हुआ था। चंद्रगुप्त के जन्मकाल तक मोरिय वंश का अस्तित्व समाप्त हो चुका था, यानी चंद्रगुप्त के पिता मोरिय वंश के अंतिम उत्तराधिकारी थे।

मूरा को बालक चंद्रगुप्त के पालन-पोषण में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आर्थिक स्थिति डाँवाँ डोल होने से बच्चे के लालन-पालन में कई तरह की मुसीबतें आड़े आईं। फिर अपने बच्चे का मनोबल न गिरे, इसके लिए मूरा उसे साहसिक कहानियाँ सुनाया करती थी। बातों-बातों में अहसास कराती थी कि वह कोई साधारण बालक नहीं है। वह राजकुमार है। उसके पिता पिप्पलिवन के राजा थे। वह बच्चे में नंद वंश से प्रतिशोध लेने की भावना प्रेरित करती थी। वह चंद्रगुप्त को अहसास दिलाती थी कि उसके पिता का हत्यारा नंद वंश का राजा महापद्मनंद है।

चंद्रगुप्त का बचपन

चंद्रगुप्त बचपन से ही परिश्रमी, कुशाग्र बुद्धि और धैर्यवान थे। विरासत की घुट्टी में माँ ने चंद्रगुप्त को राजकुमार होने का जो अहसास कराया था, वह उसके हृदय में घर कर चुका था। उधर, माँ अकसर परेशान रहती थी कि बच्चे का विकास कैसे हो। यथोचित शिक्षा-दीक्षा कैसे संभव हो। किसी की सलाह पर मूरा ने चंद्रगुप्त को एक शिकारी के सुपुर्द कर दिया। शिकारी ने चंद्रगुप्त को मवेशी चराने की जिम्मेदारी सौंपी।

कुछ इतिहासकारों और विद्वानों का मत है कि चंद्रगुप्त का बचपन मगध क्षेत्र में ही बीता। किंवदंती है कि वह

नंद के दरबार में राज-कर्मचारी थे। जब उनके साथ वहाँ अभद्र व्यवहार हुआ तब दरबार छोड़कर भाग गए। हालाँकि वे बचपन से ही तीव्र बुद्धि के थे। नंद के दरबार में चंद्रगुप्त के होने के संदर्भ में इस घटना का उल्लेख मिलता है—

सिंहल-नरेश ने नंद के दरबार में पिंजरे में बंद मोम का सिंह भेजा। देखने में वह हू-ब-हू जीवित सिंह लगता था। साथ में एक संदेश भी था, जिसमें कहा गया था कि पिंजरे में बंद इस शेर (सिंह) को पिंजरा खोले बगैर जो गायब कर देगा, वह सबसे ज्यादा बुद्धिमान और तीव्र बुद्धि का कहलाएगा। नंद के दरबार में स्तब्धता छा गई।

चंद्रगुप्त ने इस काम को करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने लोहे की एक शलाका (छड़) तपाई। जब शलाका तपकर लाल हो गई, तब उसे मोम के शेर पर रख दिया। थोड़ी ही देर में बंद पिंजरे से शेर गायब हो गया।

वैसे नंद के दरबार में चंद्रगुप्त के होने का ठोस प्रमाण कहीं नहीं मिलता। मात्र कहानियों में कहीं-कहीं इसका उल्लेख है।

चंद्रगुप्त गाँव के अन्य ग्वाल-बालों के साथ मवेशी चराने लगे। वे सब मवेशियों सहित गाँव के बाहर एक चरागाह में जाते थे। बालक चंद्रगुप्त अपने साथियों में सबसे होशियार और तीव्र बुद्धि के थे। उनकी समझदारी और सभी के साथ समान व्यवहार करने के कारण उन्हें सभी सम्मान देते थे। सभी साथियों ने चंद्रगुप्त को अपना मुखिया मान लिया था। वे उनके आदेश का पालन करते थे।

चाणक्य से मुलाकात

एक दिन की बात है। चंद्रगुप्त साथियों के साथ राजा-राजा का खेल खेल रहे थे। इसमें वे राजा बने थे। प्रजा बने उनके साथी बार-बार अपनी समस्या बताते थे और वे उनका समाधान करते थे। वे जमीन पर नहीं बैठे थे, बल्कि उनके साथी ही सिंहासन बने हुए थे। उनकी पीठ पर बैठकर वे न्याय कर रहे थे। संयोगवश तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य चाणक्य उधर से गुजर रहे थे। बच्चों का खेल देखकर वे रुक गए। वे चंद्रगुप्त को देखकर प्रभावित हुए। चंद्रगुप्त को देखकर उन्हें लगा कि यह बालक होनहार है। उन्हें किसी ऐसे पुरुष की तलाश थी, जो नंद से बदला लेने में उनकी मदद कर सके। वे चंद्रगुप्त के गुण-स्वभाव देखकर हैरान थे। एक राजा के रूप में चंद्रगुप्त अपनी प्रजा को अभय दान दे रहे थे।

उन्होंने चंद्रगुप्त की परीक्षा लेनी चाही। पास आकर उन्होंने कहा, ''हे राजन! मुझे भी कोई उपहार मिलना चाहिए।''

चंद्रगुप्त ने उत्तर दिया, ''हे ब्राह्मण! आप अपनी पसंद से गाँव की कोई भी गाय ले सकते हैं। मेरा वचन भंग करने का साहस किसी में नहीं है।''

चाणक्य ने मुसकराकर कहा, ''मैं इनमें से कोई गाय कैसे ले सकता हूँ। मुझे उसका मालिक बेरहमी से पीट सकता है।''

चंद्रगुप्त ने कहा, ''मत डरिए। ये गायें मैं आपको भेंट करता हूँ। जो वीर है वह पूरी दुनिया पर राज कर सकता है।''

चंद्रगुप्त की बातों से चाणक्य हैरान थे। उन्होंने साथ में खेल रहे बच्चों से उनका परिचय पूछा। उन बच्चों ने कहा कि जब यह माँ के गर्भ में था, तभी इसकी माँ ने इसे किसी संन्यासी को सौंप देने का संकल्प किया था। चाणक्य ने भी गाँव में आने का उद्देश्य बताया। उनकी बातों से चंद्रगुप्त भी प्रसन्न हो गए। चाणक्य ने वचन दिया कि वे उसे सचमुच का राजा बनाएँगे। चंद्रगुप्त उनके साथ जाने के लिए तैयार हो गए और चाणक्य चंद्रगुप्त को लेकर चल दिए।

दूसरी तरफ कहा जाता है कि मगध के राजा महापद्मनंद ने जब पिप्पलिवन पर आक्रमण कर चंद्रगुप्त के पिता की

हत्या कर वहाँ अपना कब्जा जमा लिया था, तभी उनकी माँ ने नंद वंश को नष्ट करने का संकल्प लिया था। जब चंद्रगुप्त का जन्म हुआ तो उन्हें लगा था कि उनका संकल्प पूरा हुआ। बातों-बातों में वह चंद्रगुप्त को नंद राजा से बदला लेने के लिए प्रेरित करती थी। जब भी बालक चंद्रगुप्त अपने पिता का जिक्र करता, वह कहती, ''पुत्र, तुम्हारे पिता की हत्या मगध के राजा महापद्मनंद ने कराई है। तुम इसका बदला जरूर लेना।'' इस तरह चंद्रगुप्त के मन में भी नंद वंश को पद-दलित करने का विचार आता रहता था।

तक्षशिला और चंद्रगुप्त की शिक्षा-दीक्षा

आचार्य चाणक्य के सान्निध्य में चंद्रगुप्त ने तक्षशिला विद्यापीठ में अध्ययन आरंभ किया। तक्षशिला पूर्वी गंधार राज्य में थी। गंधार दो क्षेत्रों—पूर्वी और पश्चिमी में विभाजित था। तक्षशिला पूर्वी गंधार में थी, जिसका उत्तराधिकारी आंभि था। पश्चिमी गंधार की राजधानी पुष्कलावती थी। वहाँ के राजा हस्ती थे। हस्ती वीर और स्वाभिमानी राजा थे।

गंधार के सीमावर्ती राज्य केकय के राजा पुरु महत्त्वाकांक्षी और बहादुर थे। उन दिनों वे राज्य-विस्तार का अभियान चला रहे थे। केकयराज पुरु ने पूर्वी गंधार पर आक्रमण किया। गंधार-नरेश ने पुरु से संधि कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। गंधार-नरेश के पुत्र आंभि को यह पसंद नहीं था। उसके मन में केकयराज पुरु से बदला लेने की भावना पनपने लगी।

उधर, पश्चिम की ओर से यवनराज सिकंदर विभिन्न राज्यों पर अपना आधिपत्य जमाते हुए आगे बढ़ रहा था। चूँकि आंभि के मन में केकय-नरेश से प्रतिशोध लेने की भावना प्रबल थी, उसने षड्यंत्र रचने और सिकंदर से संधि करने का मन बनाया। वह पुरु को परास्त करने के लिए किसी भी हद तक जाने की ठान चुका था। इसकी सूचना जब गंधार-नरेश यानी आंभि के पिता को मिली तो वे हतप्रभ रह गए। इसी शोक में उनका प्राणांत हो गया।

चंद्रगुप्त की शिक्षा

तक्षशिला विद्यापीठ में चंद्रगुप्त को शास्त्रों के साथ-साथ युद्ध और शासन की शिक्षा दी गई। स्वयं चाणक्य वहाँ राजनीति के आचार्य थे। उनका संरक्षण पाकर चंद्रगुप्त का पूरा व्यक्तित्व बदल गया। वे प्रतिभाशाली और कुशाग्र बुद्धि के तो थे ही, अत: चाणक्य के चहेते बन गए। विद्यापीठ में इस प्रतिभाशाली विद्यार्थी की तूती बोलती थी। कम ही समय में चंद्रगुप्त ने शस्त्र-संचालन, व्यूह रचना, राजनीतिक, सैन्य संचालन, राज-व्यवस्था आदि में महारत हासिल कर ली। अपने अध्ययन काल में चंद्रगुप्त ने राजनीतिक स्थितियों और पूरे भारत की परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ है। शक्तिशाली राजा अपने पड़ोसी राज्यों पर नजर गड़ाए बैठे हैं। बड़े राजा पड़ोसी छोटे राजाओं पर हमलावर हो जाते हैं। छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ होती रहती हैं। इससे भारत की आंतरिक शक्ति क्षीण पड़ती जा रही है। सैन्य शक्तियाँ भी छँटती जा रही है। वैर-भाव व वैमनस्यता भारत की जड़ें कमजोर कर रहे हैं। ऐसे में विदेशी हमलावर राज्य-दर-राज्य जीतने में सफल हो रहे हैं। चंद्रगुप्त को विद्यापीठ में भारत की इस वस्तुस्थिति का गहराई से अध्ययन करने का अवसर मिला था। जब चंद्रगुप्त की शिक्षा लगभग पूरी होने को आई, उन्हीं दिनों विदेशी आक्रांताओं ने फिर से भारत पर आक्रमण शुरू कर दिया। मकदूनिया के राजा फिलिप का पुत्र सिकंदर लगातार आगे बढ़ रहा था। वह भारत को जीतकर यहाँ से धन-संपदा लूटकर अपने देश ले जाना चाहता था। विद्यापीठ के सभी विद्यार्थी इससे उद्विग्न थे, ऐसे में चंद्रगुप्त और आचार्य चाणक्य की नींद उड़ना स्वाभाविक ही था।

गंधार में सिकंदर का प्रवेश

पश्चिम से उठा सिकंदर नाम का तूफान विजय प्राप्त करता हुआ पश्चिमी गंधार की राजधानी पुष्कलावती पहुँच

गया। सिकंदर की सेना ने पुष्कलावती को अपने घेरे में ले लिया, लेकिन राजा हस्ती ने हार नहीं मानी। उन्होंने वीरता के साथ सिकंदर का मुकाबला किया; पर उनके सैनिक ज्यादा देर तक टिक नहीं सके। अंत में राजा हस्ती भी अदम्य साहस, शौर्य और शक्ति का परिचय देते हुए युद्धभूमि में ही वीरगति को प्राप्त हुए।

उधर, पूर्वी गंधार के राजा आंभि ने सिकंदर के सामने पराजय स्वीकार कर ली। आंभि ने सुना था कि सिकंदर शरणागत की रक्षा करता है। उसने देशहित को तिलांजलि दे कायरता का परिचय देते हुए अधीनता का वरण कर लिया। इस प्रकार संपूर्ण गंधार सिकंदर की मुट्ठी में चला गया। उधर सत्तालोलुप आंभि समस्त वाहिक प्रांत का राजा बनने का सपना देख रहा था। उसकी नजर केकय पर थी। वह केकयराज पुरु को झुका देखना चाहता था।

सिकंदर ने ई.पू. 326 में सिंधु नदी को पार कर भारत में प्रवेश किया था। तक्षशिला को भारत का प्रवेश द्वार माना जाता था। आंभि के राज्य पर कब्जा करने के बाद सिकंदर ने सिंधु से वितस्ता यानी झेलम नदी तक इस राज्य की सीमा को विस्तार दे डाला।

पुरु की हार

झेलम के तटवर्ती प्रदेश केकय के राजा पुरु को सिकंदर ने मुलाकात करने के लिए बुलाया। पुरु सिकंदर की चाल समझ गया। उसने कहा कि वह युद्ध के मैदान में सिकंदर से मिलेगा, वह भी सेना के साथ। उसके बाद सिकंदर केकय राज्य की तरफ आगे बढ़ा। झेलम नदी के तट पर युद्ध हुआ। पुरु और उसके सैनिकों ने सिकंदर की सेना के साथ बहादुरी से लड़ाई की। इसमें सिकंदर की जीत हुई।

इस युद्ध में पुरु की हार के पीछे कई कारण थे। पहला कारण तो यह था कि पुरु ने सिकंदर के आक्रमण से पहले सुरक्षात्मक चाल चली। इससे सिकंदर को आक्रमण करने का मौका पहले मिला। दूसरा, मौसम ने साथ नहीं दिया। भारी बारिश की वजह से युद्ध का मैदान कीचड़ से भर गया। ऐसे में रथ के पहिये जमीन में धँसने लगे। सैनिकों के हाथों से बारिश की वजह से धनुष फिसलने लगे। तीसरा, पुरु के घुड़सवार सैनिकों के मुकाबले सिकंदर के सैनिक ज्यादा उपयोगी साबित हुए। साथ ही सिकंदर की सेना में हाथी भी थे। चौथा, पुरु ने पूरी सेना को मैदान में उतार दिया। इस मामले में सिकंदर की रणनीति ज्यादा कामयाब रही। सिकंदर ने अपनी सेना को कई टुकड़ियों में बाँटकर झेलम के तट पर फै ला दिया। इससे युद्ध के दौरान सैनिकों की शक्ति क्षीण नहीं हुई। सेना की एक टुकड़ी थक जाती थी तो दूसरी टुकड़ी उसके स्थान पर पहुँच जाती थी।

पुरु के गुप्तचर यह पता नहीं लगा पाए कि गंधार-नरेश आंभि भी यवनराज सिकंदर की मदद कर रहा था। इसलिए जब पुरु की वीर सेना सिकंदर की अनुभवी सेना को पीछे धकेल रही थी, युद्ध निर्णायक मोड़ पर पहुँचने वाला था, तभी गंधार नरेश आंभि की सेना वहाँ पहुँच गई और यवनों की तरफ से लड़ाई लड़ने लगी। केकयराज की सेना पहले ही लड़ते-लड़ते थक चुकी थी। आंभि की सेना तो अभी लड़ने आई ही थी। अचानक केकयराज पुरु का हाथी कीचड़ में धँस गया। वह मार डाला गया।

पुरु को बंदी बनाकर सिकंदर के सामने पेश किया गया। केकयराज पुरु हथकड़ी और बेड़ियों में जकड़े हुए थे। गंधार-नरेश आंभि भी वहाँ उपस्थित था। वह अपने संकल्प को याद कर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। एक साथ ही भारत के सम्राट् की गद्दी पर बैठने का स्वप्न देख रहा था। वह मन-ही-मन सोच रहा था, यवनराज सिकंदर भारत पर विजय प्राप्त कर लौट जाएँगे और संपूर्ण भारत पर उसका शासन होगा।

इसी बीच अचानक एक आवाज गूँजी, ''केकयराज पुरु! कल तक तुम इसी राज्य के स्वामी थे, मगर आज तुम्हारी हालत कुछ और है। आज तुम बंदी के रूप में खड़े हो।''

यवनराज सिकंदर की बात से पुरु जरा भी सहमे नहीं, बल्कि उन्होंने निर्भीक होकर कहा, ''यह तो समय का फेर

है। सिकंदर, युद्ध में आप भी पराजित होते तो जो स्थिति मेरी है, वह आपकी होती।''

यवनराज सिकंदर केकयराज पुरु की बात सुनकर हैरान रह गया। उधर, गंधार-नरेश आंभि पुरु की बात सुनकर उबल पड़ा। उसने आव देखा न ताव, अपनी तलवार खींच ली। वह पुरु की ओर अभी बढ़ा ही था कि यवनराज सिकंदर ने उसे रोक लिया। आंभि ने कहा, ''यवनराज! इसने अपनी बातों से आपका अपमान किया है। यह कायर है और इसे जीने का कोई अधिकार नहीं है। इसे मृत्युदंड दिया जाना चाहिए।''

इस पर सिकंदर ने कहा, ''केकयराज पुरु कायर नहीं, वीर हैं। युद्ध में हार जाना कायरता नहीं है। जो युद्ध में हारता है, वह वीर कहलाता है। कायर तो वह है जो युद्ध किए बिना ही पराजय स्वीकार कर ले।''

यवनराज की यह बात आंभि को तीर की तरह लगी। मारे शर्म के वह कुछ बोलने लायक नहीं रह गया था। दरअसल, जब सिकंदर ने गंधार की ओर कूच किया था, आंभि ने बिना युद्ध किए अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी। वह सिकंदर की शरण में चला गया था। यही बात आंभि को सता रही थी।

अब सिकंदर केकयराज पुरु से मुखातिब हुआ। सिकंदर ने पुरु से पूछा, ''राजन! आपके साथ कैसा बरताव किया जाना चाहिए?''

इस पर पुरु ने उत्तर दिया, ''जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।''

पुरु की बातों में अनुनय-विनय का भाव नहीं बल्कि स्वाभिमान झलक रहा था।

सिकंदर को पुरु का उत्तर बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा, ''पुरु, तुम वीर तो हो ही, धीर व गंभीर भी हो। तुम्हारी वीरता से प्रसन्न होकर हम तुम्हें केकय सहित आसपास के राज्यों की शासन व्यवस्था का भार सौंपते हैं।''

इसके साथ ही चिनाव नदी के पश्चिमी क्षेत्र के 37 शहर, जिनकी आबादी 5,000 से 10,000 थी, पुरु को सौंप दिए गए। सिकंदर ने केकयराज पुरु को इन क्षेत्रों को उनके राज्य में मिला लेने को कहा।

आचार्य चाणक्य की चिंता

उधर सिकंदर के भारत की ओर लगातार बढ़ते कदम से आचार्य चाणक्य चिंतित थे। उनकी चिंता इस बात से और बढ़ रही थी कि कहीं भारत पर सिकंदर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित न कर ले।

आचार्य चाणक्य ने तक्षशिला में अपने प्रिय शिष्य चंद्रगुप्त से अपनी चिंता साझा की। आचार्य ने चंद्रगुप्त को समझाया, ''वत्स, अगर यवनराज सिकंदर ने भारत पर कब्जा कर लिया तो भारत की एकता, अखंडता और संस्कृति समाप्त हो जाएँगी। भारत की सभ्यता और संस्कृति ही यहाँ की पहचान है। भारत में विदेशी संस्कृति कायम हो जाएगी और हजारों वर्षों की तपस्या से ऋषि-मुनियों ने जिस भारत को सँवारा है, वह सदा के लिए जड़-मूल से नष्ट हो जाएगा। भारतवर्ष का अस्तित्व धूल में मिल जाएगा।''

आचार्य की बात से चंद्रगुप्त भी चिंतित हो गए। अब वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि संस्कृति का अस्तित्व कितना मूल्यवान है। उन्हें लगा कि इसी बहाने आचार्य ने राष्ट्रधर्म का एक पाठ भी उन्हें पढ़ा दिया। हालाँकि चंद्रगुप्त और विद्यापीठ के अन्य शिष्यों को यह जानकारी पहले से थी कि यवनराज सिकंदर ने भारत पर आक्रमण कर दिया है; लेकिन उन्हें प्रत्यक्ष रूप से किसी तरह की क्षति दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। वे समझ रहे थे कि यह भारत के राजाओं के लिए चिंता का विषय है। आचार्य की बातों से वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि सिकंदर भारत के लिए किस प्रकार घातक है।

आचार्य ने चंद्रगुप्त सहित विद्यापीठ के सभी विद्यार्थियों को बताया कि भारत के राज्यों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो चुकी है। उन्हें एक सूत्र में बाँधकर संगठित करना होगा। इसके लिए जरूरी है कि भारत में एक संघ की स्थापना की जाए और यह काम आसान नहीं है। छोटे-छोटे गणराज्यों को मिलाकर संघ की स्थापना करना श्रमसाध्य कार्य

है। पराजित राज्य या गणराज्य बदले की भावनाओं से ओत-प्रोत हो जाते हैं; पराजय का प्रतिकार करने के लिए विजेता का विनाश करने पर उतर आते हैं। अगर बेहतर तरीके से इस कार्य को अंजाम नहीं दिया गया तो पूरे भारत में गृह-युद्ध छिड़ सकता है। संघ में कई राज्य मिलाए जाएँगे। इसमें बड़े राज्यों को महत्त्व दिया जाएगा। ऐसे में छोटे-छोटे राज्य संघ को विखंडित करने का प्रयास कर सकते हैं।

चंद्रगुप्त को विद्यापीठ की जिम्मेदारी सौंपकर आचार्य चाणक्य भारत के विभिन्न राज्यों-गणराज्यों में जाकर एकीकरण का अलख जगाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि वे केकय, कढ, क्षुद्रक, मालव आदि गणराज्यों से होते हुए मगध की तरफ जाएँगे। उन्होंने विद्यापीठ के अन्य छात्रों को भी विभिन्न राज्यों-गणराज्यों में जाकर सिकंदर से सचेत रहने का अभियान चलाने को कहा।

आचार्य चाणक्य का योगदान

भारतीय इतिहास में जब भी चंद्रगुप्त की चर्चा होती है, आचार्य चाणक्य का नाम वहाँ आना स्वाभाविक है। उनकी पहचान भारत के प्रथम अर्थशास्त्री के रूप भी है। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में वे प्रधानमंत्री और मुख्य सलाहकार थे। दूसरे शब्दों में कहें तो वे चंद्रगुप्त के भविष्य-निर्माता थे। वे तक्षशिला विद्यापीठ के आचार्य थे और छात्रों कि वाणिज्य, युद्ध-कौशल, 'अर्थशास्त्र' आदि की शिक्षा देते थे। वे छात्रों को नीतिशास्त्र भी पढ़ाते थे। चाणक्य को कौटिल्य और विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता है। उनके द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में राजकाज और राजनीति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। यही वजह है कि आज भी भारत सहित यूरोपीय देशों में चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' का महत्त्व है और पाठ्यक्रमों में उसकी झलक मिलती है। उनके अर्थशास्त्र में राजनीति को इस प्रकार समझाया गया है कि किसी शासक के लिए वह बेहतर पथ-प्रदर्शक बन सकता है। यानी राज्य को सहज रूप से चलाना हो तो किसी भी राजा/नेता को चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' को पढ़ना चाहिए। वे विद्वान् और महान् कूटनीतिज्ञ होने के साथ-साथ महान् राष्ट्रभक्त भी थे। जब सिकंदर ने भारत के दमन के लिए कदम बढ़ाया तो वे बौखला उठे और उन्होंने हर हाल में भारत की रक्षा करने की ठानी। भारत के एकीकरण की राह में उनके पास चंद्रगुप्त जैसा महान् योद्धा और सर्वगुण-संपन्न व्यक्तित्व था।

चंद्रगुप्त की उपलब्धियाँ

चंद्रगुप्त के जीवन की शुरुआत संघर्षपूर्ण रहीं और उन्हें विरासत की घुट्टी में विद्रोह की भावना पिलाई गई। इसलिए विद्रोह के साथ ही उनके भविष्य की शुरुआत हुई। वे तत्कालीन भारत की परिस्थितियों को विद्रोह के माध्यम से बदलना चाहते थे। माना जाता है कि उनकी पहली उपलब्धि शायद ई.पू. 317 में पंजाब से यूनानी सेनाओं को खदेड़ना था। यहाँ से उनका विजय अभियान शुरू हुआ और पाँच साल के अंतराल में वे भारत के एक बड़े हिस्से के सम्राट् बन गए। उस समय भारत भौगोलिक दृष्टि से एक महाद्वीप था और इतने बड़े भूभाग में किसी ने चंद्रगुप्त जितनी उपलब्धि हासिल नहीं की थी। आर्यन ने उल्लेखित किया है कि उस जमाने में जब राजा को यकीन होता था कि उसकी शक्ति सबसे अधिक है तो वह स्वयं को दिग्विजयी की उपाधि देता था। खासकर विदेशी राजा ऐसा करते थे। इस आधार पर चंद्रगुप्त एक सफल दिग्विजयी थे, क्योंकि उन्होंने सबसे शक्तिशाली विदेशी सेल्यूकस निकेटर (विजेता) को हराया था। सेल्यूकस ने पूरे पश्चिमी एशिया पर कब्जा कर लिया था। इस आधार पर बेशक कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त एक महान् विजेता थे। चंद्रगुप्त मौर्य का नाम इतिहास के गिने-चुने नायकों में शामिल होता, जिन्होंने अपने दम पर देश की दशा और दिशा में आमूल-चूल परिवर्तन के साथ उसे विकास के पथ पर ला खड़ा किया था। भारत के कई राजाओं ने जब सिकंदर के उत्तराधिकारियों के सामने हथियार डाल दिए थे, ऐसी परिस्थिति में उन्होंने भारत को विदेशी ताकतों के शिकंजे से मुक्त कराया था।

चंद्रगुप्त सिर्फ एक योद्धा ही नहीं बल्कि अन्य मामलों में भी महान् थे। वे भारत की राजनीति में जो परिवर्तन लाए, वह अस्थायी नहीं था। वे एक विशाल साम्राज्य के संस्थापक और विजेता थे। अपने साम्राज्य में उन्होंने जो सुशासन स्थापित किया, उनके पुत्र और पौत्र भी उसे अक्षुण्ण बनाए रखने में सफल रहे। भारत को समृद्धिशाली और गौरवपूर्ण बनाने में चंद्रगुप्त मौर्य के योगदान की प्रशंसा भारत सहित विदेशी इतिहासकार भी करते हैं।

'मुद्राराक्षस' के रचयिता विशाखदत्त ने चंद्रगुप्त के बारे में कहा है—बर्बर और क्रूर शासकों से भारत की जनता को मुक्ति दिलाकर चंद्रगुप्त ने देवतुल्य सम्मान पाया था। विदेशी लेखकों में एकमात्र रोम के इतिहासकार जस्टिन ने चंद्रगुप्त को अत्याचारी बताया है। यह मेगस्थनीज के विचारों से मेल नहीं खाता। मेगस्थनीज ने कहा है कि चंद्रगुप्त मौर्य भारत के नायक थे। भारतवासियों को उन्होंने समृद्धि दिलाई। यही कारण है कि चंद्रगुप्त भारत के निर्माता कहे जाते हैं।

चंद्रगुप्त ने विभिन्न दृष्टिक ोण से स्वयं को महान् साबित किया था। उन्होंने विभिन्न राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। उन्होंने अपनी प्रजा को शांतिपूर्ण और सुखमय जीवन प्रदान किया। वे महान् साम्राज्य के महान् शासक बने। भारत के प्रथम सम्राट् बने। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ शासक थे। उनकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती और यह आसान भी नहीं है। फिर भी, एक सामान्य व्यक्ति के तौर पर भी तुलना की जाए तो सिकंदर, अकबर और नेपोलियन बोनापार्ट के मुकाबले चंद्रगुप्त मौर्य महान् सम्राट् थे।

बेशक सिकंदर को महान् कहा जाता है। सच्चाई भी है कि वह महान् विजेता था। उसने कई सफलताएँ हासिल की थीं, लेकिन सच्चाई यह भी है कि सिकंदर ने उन योजनाओं पर काम किया था, जिनकी आधारशिला उसके पिता फिलिप ने रखी थी। इतिहासकार एच.जी. वेल्स के शब्दों में कहें तो, ''इतिहास सिकंदर को नायक मानता है, लेकिन वह अपने पिता फिलिप के समान महान् नहीं था।'' वह अपनी योजनाओं में कहीं-न-कहीं पिछड़ रहा था। यही वजह है कि तनाव के चलते कम उम्र में उसकी मौत हो गई। वह विश्व विजेता बनना चाहता था।

लेकिन चंद्रगुप्त में अलग बात थी। वे अलग किस्म के पुरुष थे। वे सिकंदर के समान बहादुर और साहसी तो थे ही, उनमें भारत की प्रजा को आजादी दिलाने की ललक थी। हालाँकि वे किसी राजपुत्र के समान सोने का चम्मच मुँह में लेकर पैदा नहीं हुए थे, लेकिन अपने बूते उन्होंने अपने भविष्य का निर्माण किया था। यही वजह है कि 18 साल की उम्र से ही सफलताएँ उनके इर्द-गिर्द मँडराने लगी थीं। हालाँकि उन्हें पराजय का भी सामना करना पड़ा था, लेकिन कोई भी पराजय अधिक समय तक उनका रास्ता नहीं रोक पाती थी। वे न सिर्फ विजेता बने बल्कि एक सफल राजा के रूप में उन्होंने अपनी प्रजा को सारे सुख-साधन सुलभ करवाए। इस तरह मुक्तकंठ से कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त मौर्य सिकंदर की तुलना में कहीं अधिक महान् थे।

मुगल बादशाह अकबर कई मामलों में चंद्रगुप्त के समान थे। हालाँकि कला व संस्कृति के प्रति रुझान और सम्मान की दृष्टि से अकबर की तुलना सम्राट् अशोक से की जाती है। फिर भी अशोक के मुकाबले चंद्रगुप्त से उनकी छवि अधिक मेल खाती है। चंद्रगुप्त की तरह ही वे योद्धा प्रकृति के थे। उनके समान ही वे विजेता और राजा भी थे। अकबर को विरासत में सारी सुविधाएँ और साम्राज्य मिला था। चंद्रगुप्त ने गरीबी और समस्याओं से जूझते हुए स्वयं को स्थापित किया था। उन्हें निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा था। डॉ. विन्सेंट स्मिथ का कहना है कि अकबर से लगभग 1,900 वर्ष पूर्व चंद्रगुप्त ने बेहतर शासन व्यवस्था स्थापित की थी।

इतिहास में नेपोलियन की भी महान् छवि है। उनकी तुलना चंद्रगुप्त से की जाती है, क्योंकि उन्होंने किसी दूसरे के माध्यम से नहीं बल्कि स्वयं के उद्यम से अपनी मंजिल हासिल की थी। इस प्रकार चंद्रगुप्त असामान्य प्रतिभा के धनी थे। कवियों और लेखकों ने चंद्रगुप्त की प्रसिद्धि के बारे में काफी कुछ लिखा है। सही मायने में वे युग-पुरुष

थे और इतिहास में उनका नाम सदा अमर रहेगा।

चंद्रगुप्त मौर्य का वंश

चंद्रगुप्त मौर्य के वंश के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। विद्वानों ने साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक सामग्रियों के आधार पर अपने विचार प्रकट किए हैं। विभिन्न ग्रंथों में मौर्यों की उत्पत्ति के बारे में वर्णन मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मौर्य क्षत्रिय थे, जबकि कुछ उन्हें शूद्र और पारसी मानते हैं; लेकिन अधिकतर प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त क्षत्रिय थे।

बौद्ध साहित्य :मौर्य क्षत्रिय थे

ज्यादातर इतिहासकार मानते हैं कि मौर्य क्षत्रिय थे। बौद्ध साहित्य के विभिन्न ग्रंथों से इसकी पुष्टि होती है कि मौर्य क्षत्रिय थे। महावंश के अनुसार, चंद्रगुप्त 'मोरिय' नामक क्षत्रिय जाति के थे। मोरिय शाक्यों की उस उच्च जाति की शाखा थी, जिसमें महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। महावंश के अनुसार, महात्मा बुद्ध के समय अत्याचारी कोसल-नरेश के आक्रमण के बाद शाक्यों ने वहाँ से हिमालय के एक सुरक्षित स्थान पर शरण ली। किंवदंती है कि उन्होंने अपने लिए जिन भवनों का निर्माण कराया था, उनका आकार मोरों की ग्रीवा के समान था। इसलिए उस नगर का नाम मोरिय नगर पड़ा और वहाँ रहनेवालों को मौर्य कहा गया। 'महावंश' में वर्णन है कि नंदों से नाराज होकर चाणक्य ने नौवें नंद राजा घननंद का विनाश कर चंद्रगुप्त, जो यशस्वी एवं अभिजात मोरिय वंश का था, उसे समस्त जंबूद्वीप का शासक बनाया। 'दिव्यावदान' में भी चंद्रगुप्त के पुत्र तथा मौर्य शासक बिंदुसार को क्षत्रिय कहा गया। इससे मौर्यों का क्षत्रिय होना प्रमाणित होता है। 'महापरिनिव्वान सुत्त' नामक एक अन्य बौद्ध ग्रंथ में मौर्यों के क्षत्रिय होने की पुष्टि होती है। 'महाबोधिवंश' से भी ज्ञात होता है कि मौर्य क्षत्रिय थे।

जैन गं:रथों से पता चलता है कि मौर्य क्षत्रिय थे। हेमचंद रचित 'परिशिष्टपर्वण' के अनुसार, चंद्रगुप्त मयूर पालकों के सरदार की पुत्री का पुत्र था। 'पुण्याश्रव कथाकोश' के रचयिता रामचंद्र थे। इसमें मौर्यों को क्षत्रिय कहा गया। संपूर्ण जैन साहित्य में कहीं भी मौर्यों को शूद्र नहीं कहा गया,जबकि नंदों को शूद्र बताया गया।

प्लूटार्क ने लिखा है कि ऐंड्रोकोटस (चंद्रगुप्त) स्वयं, जो उस समय नवयुवक था, सिकंदर से मिला था। पुरातात्त्विक स्रोतों से बौद्ध एवं जैन धर्मग्रंथों में वर्णित कथन की पुष्टि होती है कि मौर्य क्षत्रिय थे। नंदगढ़ में स्थित अशोक के स्तंभ के निचले भाग में एक मोर का चिह्न अंकित है।

मौर्य शूद्र थे

कुछ इतिहासकारों का मत है कि मौर्य शूद्र थे। ब्राह्मण साहित्य के अनुसार, मौर्य के लिए ऐसे शब्द का इस्तेमाल किया गया, जिससे उसके शूद्र होने का प्रमाण मिलता है। पुराणों में बताया गया है कि शिशुनाग वंश के विनाश के पश्चात् उस वंश के अंतिम राजा महानंद की शूद्र पत्नी से उत्पन्न महापद्मनंद परशुराम के समान क्षत्रियों का नाश करनेवाला होगा। 18वीं सदी में रत्नगर्भ नामक विद्वान् ने 'विष्णु पुराण' की टीका लिखी थी। उसमें उन्होंने बताया कि चंद्रगुप्त का जन्म नंद राजा की पत्नी मूरा से हुआ था, इसलिए उसे 'मौर्य' कहा गया। इस आधार पर मौर्य को शूद्र कहा गया। हालाँकि मौर्य को शूद्र कहना युक्तिसंगत नहीं है। पुराणों में कहीं भी चंद्रगुप्त की जाति का उल्लेख नहीं है। इसलिए टीकाकार का चंद्रगुप्त को नंदवंशीय बताना असंगत है। उल्लेखनीय है कि केवल ब्राह्मण साहित्य में ही मौर्यों को शूद्र दिखाया गया। इसका कारण यह हो सकता है कि मौर्य शासक ब्राह्मण धर्मावलंबी नहीं थे। इसी कारण उन्हें 'वृषल' कहा गया। एक अन्य कारण सेल्यूकस की पुत्री से चंद्रगुप्त मौर्य का विवाह करना भी था। दरअसल ब्राह्मण धर्मानुयायियों ने इस विवाह को पसंद नहीं किया था। यदि चंद्रगुप्त शूद्र होते तो चाणक्य उन्हें राजा नहीं बनाते। 'अर्थशास्त्र' में एक स्थान पर चाणक्य ने लिखा है कि जनता उच्च जातीय (अभिजात) दुर्बल शासक

को भी सम्मान दे सकती है, लेकिन नीच कुलीन (अनभिजात) शक्तिशाली राजा को भी स्वीकार नहीं कर सकती।

मौर्य पारसी थे

पाटलिपुत्र में उत्खनन करानेवाले डॉ. डी.बी. स्पूनर का विचार है कि मौर्य पारसी थे। उन्होंने अपने मत के समर्थन में कहा है कि चंद्रगुप्त मौर्य के समय में भारत एवं फारस की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रथाओं में समानता थी। इस आधार पर माना जा सकता है कि मौर्य पारसी रहे होंगे। हालाँकि अनेक विद्वानों ने डॉ. स्पूनर के विचारों से अपनी असहमति जताई है। उनका तर्क है कि फारस में ऐसी बहुत सी प्रथाएँ थीं, जो भारत में नहीं थीं। साथ ही भारत में काफी ऐसी प्रथाएँ थीं, जो फारस में प्रचलित नहीं थीं। इससे स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य पारसी नहीं थे।

निष्कर्ष

मौर्य निस्संदेह क्षत्रिय थे। बौद्ध, जैन और हिंदू धर्मग्रंथों के आधार पर कहा जा सकता है कि मौर्य क्षत्रिय थे, जिन्हें राजपूत भी कहा जाता है। 'महापरिनिव्वान सुत्त' से प्रमाण मिलता है कि मौर्य क्षत्रिय थे और चंद्रगुप्त के पिता पिप्पलिवन के शासक थे। एक प्राचीन तोप में पालि भाषा में यह उल्लेख किया गया है कि चंद्रगुप्त के पुत्र बिंदुसार और उनके प्रपौत्र अशोक क्षत्रिय थे। जैन ग्रंथ 'कल्पसूत्र' में उल्लेख मिलता है कि मौर्य कश्यप गोत्र के थे और वे समाज में उच्च वर्ग से संबंध रखते थे। यहाँ उच्च वर्ग और शासक से स्पष्ट होता है कि वे क्षत्रिय थे। पुराणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मौर्य एक नया वंश था, जिसका नंद वंश से कोई संबंध नहीं था। शूद्रों का राज्य नंदों से शुरू हुआ और चंद्रगुप्त मौर्य नंदों के कट्टर विरोधी थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मौर्य क्षत्रिय थे। दूसरी तरफ, मध्यकालीन साहित्य में उल्लेख मिलता है कि मौर्य सूर्य के उपासक थे और क्षत्रिय सूर्य की उपासना करते थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मौर्य क्षत्रिय थे।

❑

चंद्रगुप्त का युद्ध अभियान

चंद्रगुप्त मौर्य और चाणक्य का उद्देश्य किसी तरह नंद वंश का विनाश करना और एकता के सूत्र में संपूर्ण भारत को पिरोकर नए भारत का निर्माण करना था। हालाँकि नंद राजा से लोहा लेना उनके लिए आसान काम नहीं था। चंद्रगुप्त और चाणक्य के युद्ध अभियान को लेकर इतिहासकारों के मतों में भिन्नता है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उन्होंने पहले मगध पर, फिर पंजाब पर आक्रमण किया था। कुछ का मानना है कि चाणक्य और चंद्रगुप्त ने पहले पंजाब पर आक्रमण किया था। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि उन्होंने पहले मगध पर आक्रमण किया था, लेकिन जब सफलता नहीं मिली तो चंद्रगुप्त ने सिकंदर से मिलकर उसे नंद राजा के खिलाफ भड़काने की रणनीति तैयार की। लेकिन चंद्रगुप्त की अहंकार भरी बातों से सिकंदर इतना नाराज हो गया था कि उसने चंद्रगुप्त की हत्या करने की आज्ञा दे दी। चंद्रगुप्त किसी तरह से वहाँ से भाग निकले।

ग्रंथ 'महावंश' के अनुसार, चाणक्य ने एक विशाल सेना तैयार कर चंद्रगुप्त को विजय यात्रा पर निकल जाने की आज्ञा दी। चंद्रगुप्त ने मगध के नगरों और ग्रामों को जीतना शुरू किया; लेकिन स्थानीय लोगों ने चंद्रगुप्त की सेना को घेर लिया और उसे तबाह कर डाला। किसी प्रकार चंद्रगुप्त और चाणक्य वहाँ से भागने में सफल रहे। उसके बाद वे दोनों अपनी पहचान छिपाने के लिए छद्म वेश में रहने लगे। जब दोनों वेश बदलकर घूमते फिर रहे थे तो एक रात वे एक घर में ठहरे थे। वहाँ एक महिला अपने बच्चों को खाना खिला रही थी। एक बच्चा रोटी के बीचवाले हिस्से को खा रहा था। रोटी गरम थी और इससे बच्चे का मुँह झुलस गया। यह देख उस महिला ने बच्चे से कहा कि तुम्हारा भी काम चंद्रगुप्त जैसा है। बच्चे के पूछने पर महिला ने कहा, 'तुमने गरम रोटी को किनारे से खाने के बजाय बीच से खाया। इससे तुम्हारा मुँह झुलस गया। चंद्रगुप्त ने भी सीमांत प्रदेशों पर विजय प्राप्त करने के बजाय मगध के मध्य भाग पर आक्रमण किया। इससे जनता भड़क उठी और उसे मुँह की खानी पड़ी।' कहा जाता है कि इस वार्त्तालाप से प्रेरित होकर चंद्रगुप्त ने अपनी योजना में परिवर्तन कर पंजाब पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

पंजाब पर आक्रमण की तैयारी

पंजाब पर अधिकार करने से पहले चंद्रगुप्त और चाणक्य को धन, सेना, जनमत और अन्य राज्यों से संबंध बनाना जरूरी था। उधर, पंजाब पर अधिकार करने के लिए यूनानियों को खदेड़ना जरूरी था। सिकंदर की जीत की वजह से पंजाब के एक बड़े भूभाग पर यूनानियों का अधिकार हो गया था। इसके लिए चंद्रगुप्त और चाणक्य को विशेष तैयारी करनी थी।

प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि चाणक्य ने युद्ध अभियान को आगे बढ़ाने के लिए विंध्याचल के वनों में जाकर धन इकट्ठा किया। सेना गठित करने के लिए चाणक्य और चंद्रगुप्त दोनों निकल पड़े। कहा जाता है कि चाणक्य ने स्थानीय निवासियों को सेना में शामिल किया। इतिहासकार जस्टिन के अनुसार, इन स्थानीय निवासियों, जिन्हें चंद्रगुप्त ने अपनी सेना में शामिल किया था, उन्हें लुटेरा कहा गया। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि वे स्थानीय निवासी पंजाब की उन गणतांत्रिक जातियों में से थे, जिन्हें आरट्ट अथवा 'अराट्रक' कहा जाता था। उन पर राजा का नियंत्रण नहीं था। उनके पास बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्रियाँ थीं। उनकी क्षमताओं और युद्ध-कौशल को चाणक्य व चंद्रगुप्त ने खूब भुनाया। उन स्थानीय निवासियों के प्रतिरोध की भावना और सुसंगठित शक्ति की बदौलत चंद्रगुप्त की विशाल सेना तैयार हो गई।

चंद्रगुप्त ने स्थानीय निवासियों को सेना में भरती करने के साथ पड़ोसी राज्यों के राजाओं से मैत्री स्थापित की।

इस तरह अपनी शक्ति में वृद्धि की। विशाखदत्त रचित नाटक 'मुद्राराक्षस' से पता चलता है कि चाणक्य ने हिमालय क्षेत्र के एक राज्य के राजा पर्वतक से मैत्री की थी। इसके अतिरिक्त जिन राज्यों को सिकंदर ने जीतकर अपने अधीन किया था, वहाँ से जनमत-संग्रह करना शुरू किया। दरअसल वहाँ के राजा और प्रजा विदेशी अधीनता मन से स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। चंद्रगुप्त और चाणक्य ने इसका फायदा उठाया और उन्हें यूनानियों के खिलाफ भड़काना शुरू किया। इस तरह पूरी तैयारी करने के बाद चंद्रगुप्त ने यूनानियों पर आक्रमण किया। इसके बाद चंद्रगुप्त ने पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों को यूनानियों से मुक्त कराया था।

मगध पर आक्रमण

पंजाब पर विजय प्राप्त करने के बाद चंद्रगुप्त और चाणक्य ने मगध की ओर कूच किया। इतिहासकारों का कहना है कि चंद्रगुप्त और चाणक्य जहाँ-जहाँ विजय प्राप्त करते जाते थे वहाँ-वहाँ सैनिकों की नियुक्ति करते जाते थे। इस प्रकार रणनीति बनाकर उन्होंने मगध पर आक्रमण किया।

इतिहासकार रीज डेविड्स के अनुसार—'जिस सेना के बल पर चंद्रगुप्त ने घननंद को परास्त किया था, उसका मूल आधार पंजाब से भरती किए गए सैनिकों पर था।'

चंद्रगुप्त और मगध के राजा घननंद की सेना के बीच भीषण युद्ध हुआ। घननंद की सेना में दो लाख पदाति, बीस हजार अश्वारोही, दो हजार रथ और तीन हजार हाथी थे। इतनी विशाल सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। 'मिलिंदपन्हों' के अनुसार, इस युद्ध में चंद्रगुप्त और नंद राजा घननंद के हजारों हाथी, अश्वारोही और लाखों पदाति मारे गए थे। हालाँकि इसे अतिशयोक्तिपूर्ण माना गया, लेकिन फिर भी रणक्षेत्र में भारी तबाही मची थी। इससे सहज ही पता लगता है कि घननंद और चंद्रगुप्त के बीच अत्यंत भीषण युद्ध हुआ था। 'मिलिंदपन्हों' से ही ज्ञात होता है कि नंद राजा के सेनापति का नाम भद्दसाल था। इस युद्ध में हिमालय क्षेत्र के राजा पर्वतक ने चंद्रगुप्त का साथ दिया था। इस युद्ध में चंद्रगुप्त ने घननंद को परास्त किया। चाणक्य ने नंद वंश का नामोनिशान तक मिटा दिया। यहाँ तक कि नंदवंश का राजचिह्न भी खत्म कर दिया गया। नंदवंश के विनाश के बाद चंद्रगुप्त का आधिपत्य कायम हुआ। चंद्रगुप्त ने जनहित में काम करना शुरू किया। यवनों से भारत को मुक्त किया और अपने वंश के अस्तित्व की उपयोगिता सिद्ध की।

साम्राज्य का विस्तार

नंद वंश के उन्मूलन और मगध की गद्दी पर आसीन होने के बाद चंद्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का सम्राट् बन गया। मगध के अतिरिक्त उन सभी प्रदेशों को, जिन्हें सिकंदर ने अपने अधीन किया था, चाणक्य की कूटनीति से चंद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। चंद्रगुप्त का साम्राज्य हिमालय से दक्षिणापथ और बंगाल की खाड़ी से यमुना नदी तक विस्तार पा गया।

सेल्यूकस से मुकाबला

चंद्रगुप्त मौर्य जिस समय अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहे थे, उसी समय सिकंदर का सेनापति सेल्यूकस भी एशियाई-यूनानी साम्राज्य के विस्तार में लगा हुआ था। सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके दो सेनापतियों सेल्यूकस और एंटीगोनस में साम्राज्य विभाजन के मामले में संघर्ष हुआ। प्रारंभ में एंटीगोनस को सफलता मिली; लेकिन उसके लगभग 12 साल बाद सेल्यूकस ने बेबिलोन को जीत लिया। बाद में सेल्यूकस ने एंटीगोनस को भी हरा दिया और उसे मिस्र में शरण लेने को मजबूर कर दिया। सिकंदर की मृत्यु के लगभग 17 साल बाद सेल्यूकस ने अपना राज्याभिषेक किया और 'निकेटर' (विजेता) की उपाधि धारण की।

सेल्यूकस सिकंदर के समान ही वीर एवं महत्त्वाकांक्षी था। उसने सिकंदर द्वारा जीते हुए भारत के प्रदेशों को फिर

से अपने अधीन करने का प्रयास किया। उल्लेखनीय है कि सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् ये प्रदेश स्वतंत्र हो गए थे। इसी उद्देश्य से सेल्यूकस ने पहले बैक्ट्रिया पर आक्रमण कि या, जिसमें सफलता मिली। इससे प्रोत्साहित होकर सेल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया। इस बीच भारत की स्थिति बदल चुकी थी। जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों और क्षत्रपों में बँटा हुआ था। लेकिन अब सम्राट् चंद्रगुप्त ने भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर शक्तिशाली बना दिया था। सेल्यूकस का मुकाबला सुगठित भारत से हुआ। नतीजतन उसे अपने ही राज्य के कई प्रदेश चंद्रगुप्त को सौंपने पड़े। सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त से संधि कर ली और भारत विजय के अपने अभियान को विराम देकर वह एंटीगोनस के विरुद्ध युद्ध में जुट गया।

इतिहासकार प्लूटार्क के अनुसार, सेल्यूकस और चंद्रगुप्त के मध्य हुई संधि में निम्नलिखित बातें शामिल थीं—

- सेल्यूकस ने एरियाना प्रदेश का विस्तृत भूभाग चंद्रगुप्त को दे दिया। इस प्रकार चंद्रगुप्त को आरिया, परोपनिसदी, आर्कोशिया, जेड्रोसिया आदि प्रदेश प्राप्त हुए थे। आरिया आधुनिक हेरात, परोपनिसदी अफगानिस्तान के उस पर्वतीय क्षेत्र को कहा जाता था, जो हिंदूकुश पर्वतमाला के नजदीक स्थित है। आर्कोशिया आधुनिक कंधार और जैड्रोनिया बलूचिस्तान प्रदेश को कहा जाता था।
- चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी दिए थे। इस आधार पर कुछ इतिहासकारों का कहना है कि यह उपहार देकर चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस से मैत्री संबंध स्थापित किया था।

सेल्यूकस और चंद्रगुप्त के बीच संबंध

यवन सेनापति सेल्यूकस ने सिंधु तट पर हुई लड़ाई के बाद चंद्रगुप्त को बहुत से अमूल्य उपहार दिए, जिसमें धन और अन्य सामग्री शामिल थी। विभिन्न विद्वानों का कहना है कि सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को जो सबसे बेशकीमती चीज दी थी, वह थी उसकी अतिसुंदरी पुत्री हेलेना। मगध की विद्वत् परिषद् में यह निर्णय लिया गया कि यदि सेल्यूकस की पुत्री हेलेना से चंद्रगुप्त का विवाह हो जाए तो पश्चिमी सीमा यवनों के आक्रमण से सुरक्षित हो जाएगी। अत: चंद्रगुप्त ने हेलेना से विवाह कर लिया। इससे दोनों के बीच मैत्री संबंध और भी सुदृढ़ हो गए। इसकी पुष्टि उस समय की एक घटना से भी होती है। कहा जाता है कि सेल्यूकस को चंद्रगुप्त ने कुछ भारतीय औषधियाँ भी भेजी थीं। सेल्यूकस ने मेगस्थनीज को चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा था। इन संबंधों की वजह से भारत कुछ समय के लिए यूनानियों के आक्रमण के भय से मुक्त हो गया था। अपने राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने के बाद चंद्रगुप्त ने पश्चिमी और दक्षिणी भारत की ओर ध्यान दिया। हालाँकि सेल्यूकस को हराने के बाद चंद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार ईरान की सीमा तक कर लिया था, क्योंकि काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान आदि राज्य सेल्यूकस के अधिकार में थे।

चंद्रगुप्त ने अपने शासन के अंतिम दिनों में दिग्विजय का अभियान शुरू किया। दक्षिण में उसने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार मैसूर के शिकारपुर ताल्लुका तक किया था। दक्षिण भारत में चंद्रगुप्त ने कोंकण प्रदेश के रास्ते प्रवेश किया था। पिछले दो हजार वर्षों में जितने विस्तृत साम्राज्य पर राज्य करने का सौभाग्य चंद्रगुप्त को मात्र 18 साल की उम्र में मिला, वह सौभाग्य न तो किसी मुगल शासक और न ही अंग्रेजों को प्राप्त हुआ था। उनकी इस असाधारण विजय के कारण ही उन्हें भारत ही नहीं, संसार के प्रतापी राजाओं में श्रेष्ठ माना जाता है।

चंद्रगुप्त ने पश्चिमी भारत पर विजय प्राप्त की थी, इसमें कोई संशय नहीं। रुद्रदमन के शिलालेख से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने उर्जयत पर्वत की तराई से बहनेवाली सुवर्णसिक्ता और पलीशिनी आदि नदियों पर बाँध बनाकर सौराष्ट्र में प्रसिद्ध सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। बुंबई के थाणे जिला के सोपारा नामक स्थान से प्राप्त अशोक के शिलालेख से ज्ञात होता है कि सोपारा भी चंद्रगुप्त के अधीन रहा था।

चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य-विस्तार

चंद्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य-विस्तार दूर-दूर तक था। उत्तर में हिमालय से दक्षिण में मैसूर तक और पश्चिम में हिंदूकुश से पूर्व में बंगाल तक। अफगानिस्तान और बलूचिस्तान, संपूर्ण पंजाब, सिंधु प्रदेश, कश्मीर, नेपाल, गंगा-यमुना का दोआब, मगध, बंगाल, कलिंग, सौराष्ट्र, मालवा आदि चंद्रगुप्त के साम्राज्य के अंग थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त मौर्य संपूर्ण भारत का सम्राट् था।

सिकंदर की विदाई पर नंद वंश के विनाश की गाथा

सिकंदर का अभियान प्रारंभ से ही निर्विघ्न रूप से आगे नहीं बढ़ रहा था। हालाँकि कुछ इतिहासकार अनुमान लगाते हैं कि सिकंदर का अभियान देखने से निर्विघ्न प्रतीत होता था, लेकिन उसकी कठिनाइयाँ गहराइयों में छिपी थीं। सिकंदर की सेना के भारत से विदा होते ही सीमावर्ती प्रदेशों में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। सिकंदर द्वारा नियुक्त क्षत्रपों और सेनापतियों में इतनी क्षमता नहीं थी कि वे अपने अधीनस्थ प्रदेशों को अपने नियंत्रण में रख सकें। चंद्रगुप्त और चाणक्य के लिए वही उपयुक्त समय था, जब नंद वंश के उन्मूलन की आकांक्षा लेकर वे इस सीमांत प्रदेश में आए। इसलिए भी कहा जाता है कि सिकंदर की विदाई पर नंद वंश के विनाश की गाथा लिखी गई।

सिकंदर की मृत्यु के बाद यूनानियों की स्थिति

जिस समय सिकंदर भारत में था, उसी समय अश्वकायनों ने पुष्कलावती के क्षत्रप किकनोर की हत्या कर दी थी। अश्वकायन राज्य के प्रशासन में किकनोर की सहायता के लिए एक भारतीय भी नियुक्त किया गया था। यूनानी लेखकों ने उसे सिसिकोट्टस कहा है। माना जाता है कि सिसिकोट्टस संभवत: शशिगुप्त होगा। अश्वकायन शशिगुप्त की भी हत्या कर देना चाहते थे। इसकी जानकारी मिलने पर सिकंदर ने उसकी सहायता के लिए सेना भेजी थी। इससे उसकी रक्षा हुई। किकनोर की हत्या के बाद फिलिप पुष्कलावती का क्षत्रप नियुक्त किया गया था। फिलिप भारत में सबसे अनुभवी यूनानी प्रशासक था। फिलिप की हत्या के बाद सिकंदर बौखला गया। उसने तत्काल आदेश दिया कि तक्षशिला का राजा आंभि फिलिप का स्थान ग्रहण करे और यूनानी शिविर का सेनापति यूडेमस उसकी सहायता करे; किंतु सेना के अभाव में विद्रोहियों की निरंतर बढ़ती शक्ति के कारण यूडेमस इस कार्य में सफल नहीं हो सका।

सिकंदर की मृत्यु के बाद भारत में यूनानियों की स्थिति और खराब हो गई। सिकंदर के कोई संतान नहीं थी। प्रबल उत्तराधिकारी के अभाव में उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों में संघर्ष होने लगा। इसने चंद्रगुप्त और चाणक्य को अपने अभियान को आगे बढ़ाने का अवसर दिया।

❑

प्रशासनिक व्यवस्था

चंद्रगुप्त ने मगध को जीतने के बाद अपने साम्राज्य का विस्तार शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने भारत के दक्षिणी राज्यों को अपने साम्राज्य में शामिल किया। माना जाता है कि चंद्रगुप्त ही पहला राजा था, जिसने उत्तर और दक्षिण भारत के राज्यों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। इससे न सिर्फ चंद्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार हुआ, बल्कि उनकी शक्ति में भी वृद्धि हुई। पिछले दो हजार वर्षों में मुगलों और अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य का जितना विस्तार नहीं किया, उससे कहीं ज्यादा चंद्रगुप्त मौर्य ने 18 वर्ष की उम्र में किया। उनकी असाधारण उपलब्धियों के कारण संसार के गिने-चुने प्रतापी राजाओं में उनकी गिनती होती है।

इतिहासकारों और प्राचीन लेखों से प्रमाण मिलता है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने उत्तर-पश्चिम में पर्शिया की सीमा तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। दूसरी तरफ गंगा के मैदानी भाग तक साम्राज्य का विस्तार किया, जो संभवत: कश्मीर और नेपाल से लगे हिमालय का तराई क्षेत्र था। रुद्रदमन के लेखों से प्रमाण मिलता है कि पश्चिम में काठियावाड़ और पूर्व में बंगाल तक चंद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। मेगस्थनीज ने उल्लेखित किया है कि चंद्रगुप्त के समय में आंध्र सबसे शक्तिशाली और स्वतंत्र राज्य था। चंद्रगुप्त और उनके उत्तराधिकारियों ने सुदूर दक्षिण के पांड्य, कोल और केर (केरल) को स्वतंत्र छोड़ दिया था। इस प्रकार चंद्रगुप्त मौर्य का कलिंग, आंध्र और तमिल भूमि को छोड़कर संपूर्ण भारतीय उप-महाद्वीप में शासन था। अफगानिस्तान और बलूचिस्तान भी चंद्रगुप्त के साम्राज्य का ही हिस्सा थे। हालाँकि स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष रूप से चंद्रगुप्त इस विशाल साम्राज्य के शासक नहीं थे। कौटिल्य यानी चाणक्य ने उल्लेख किया है कि विजेता राजा अपने उत्तराधिकारियों के रूप में पुत्र, प्रपौत्र व अन्य सगे-संबंधियों को विजित राज्यों की जिम्मेदारी सौंप देते थे। आलेखों और साहित्य से प्रमाण मिलता है कि दो राजकुमारों को सामंती सौंपी गई थी। 'मुद्राराक्षस' से प्रमाण मिलता है कि पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को चंद्रगुप्त के सामंत के रूप में उनके राज्य में शासन करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। रुद्रदमन के जूनागढ़ अभिलेख में अशोक के नाम यवनों की जमींदारी थी।

चाणक्य ने कुछ निश्चित संघों—लिच्छवि, वज्जि, मल्ल, मद्र, कूकर, कुरु और पंचाल—का उल्लेख किया था, जिनके प्रमुख राजा या नरेश कहलाते थे। मद्र को छोड़कर सभी संघ नंद राजाओं के साम्राज्य में थे और ये स्वायत्तशासी थे। चंद्रगुप्त के समय भी यहाँ पर स्वायत्त शासन था। इसके अलावा चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' से चंद्रगुप्त के शासनकाल में प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है।

चंद्रगुप्त के प्रशासनिक काल में राजा ही प्रशासनिक मुखिया होता था। राजा के पास ही सेना, न्याय, कानूनी और अधिशासी शक्ति होती थी। समय-समय पर इन संगठनों को मजबूत बनाने का काम राजा ही करता था। प्राचीन भारत में राजा की शक्ति कभी नियंत्रण से बाहर नहीं रही थी। चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि प्राचीन भारत में वे अच्छे राजा नहीं समझे जाते थे, जो अपने आपको संतुष्ट करते थे यानी अपने चलाए नियमों को मनवाते थे, बल्कि जो नियमों का पालन भी करते थे, वे अच्छे राजा समझे जाते थे।

चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में 18 प्रकार के अमात्यों अथवा उच्च पदाधिकारियों का उल्लेख किया है। ये प्रशासन की विभिन्न शाखाओं का संचालन करते थे। मौर्यकाल की प्रशासनिक व्यवस्था में ये शामिल थे। माना जाता है कि अशोक के शासनकाल में जिन 'महामंतों' का उल्लेख मिलता है वे इन्हीं से संबंधित थे। इन अधिकारियों का चयन राजा की देखरेख में उनके चरित्र और समाज में सम्मान के आधार पर किया जाता था। प्रशासनिक प्रणालियों के आधार पर चंद्रगुप्त द्वारा उठाए गए कदमों के बारे में पता चलता है। वे अपने राज्य में

कल्याण और समृद्धि स्थापित करने के लिए तत्पर रहते थे। वे विदेशी दासता झेल रहे लोगों को मुक्ति दिलाने में प्रयासरत रहते थे।

चंद्रगुप्त के शासनकाल में कौटिल्य द्वारा वर्णित 18 अमात्यों में मंत्रिण (कुलपति), पुरोहित (पूजा-पाठ करानेवाले), सेनापति (मुख्य सेनाधिकारी) और युवराज (राजकुमार) होते थे। इनमें से प्रत्येक को 48,000 पण सालाना वेतन दिया जाता था। इनको मिलाकर आंतरिक मंत्रिमंडल का निर्माण किया गया था। चाणक्य के अनुसार, राजा के गुप्त सलाहकारों की संख्या 3 से कम और 4 से अधिक नहीं होती थी।

उच्च अधिकारियों की द्वितीय श्रेणी में दौवारिक या राजा के मुख्य स्वागत अधिकारी, अंतर्वमशिक या राजकीय अंत:पुर का मुख्य प्रभारी, प्रशस्त्र या मुख्य सूचना अधिकारी, सन्निधत्र या शाही गुमास्ता (राजमहल का मुख्य कर्मचारी) तथा समाहर्त्र या कलेक्टर-जनरल होते थे। उन्हें सालाना 24,000 पण का वेतन दिया जाता था। दौवारिक का काम राजा के साथ प्रजा की मुलाकात कराना और उसके समय का निर्धारण करना था। अंतर्वमशिक का कार्य राजकीय अंत:पुर के सदस्यों की जरूरतों और सुविधाओं की व्यवस्था करना था। प्रशस्त्र राजा के आदेशों को लिखता था और उन्हें सार्वजनिक करता था। सन्निधत्र राजमहल के कामकाज को देखता था तथा वही खजांची भी होता था। खजाना और गोदाम भरने की जिम्मेदारी भी उसकी ही होती थी। जहाँ इसकी जरूरत होती थी, सन्निधत्र ही उपलब्ध कराने का काम करता था। शस्त्रागार व न्याय के लिए कोर्ट बनाने और मंत्रियों तथा सचिवों के लिए कार्यालय का निर्माण कराना भी उसी की जिम्मेदारी होती थी। समाहर्त्र पूरे राज्य से राजस्व की वसूली करता था। उनकी सहायता के लिए गोप होते थे, जिन पर पाँच से दस गाँव की जिम्मेदारी होती थी। स्थानीक गोप से बड़ा पद होता था और उसके अधीन एक पूरा जिला आता था।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में उनकी मंत्रिपरिषद् में उच्च पदाधिकारियों की तीसरी श्रेणी में पौरव्यावहारिक या सिटी मैजिस्ट्रेट, राष्ट्रपाल या राज्य के गवर्नर, अंतपाल या सीमाओं के प्रभारी, कर्मांतिक या कारखानों के प्रभारी और नायक या पुलिस प्रमुख होते थे। इनका सालाना वेतन 12,000 पण था।

डॉ. बी.आर. भंडारकर के अनुसार, आधुनिक सचिवालयों से मौर्य साम्राज्य की मंत्रिपरिषद् की तुलना की जा सकती है। मंत्रिपरिषद् के माध्यम से राजा और उच्च पदाधिकारियों का संपर्क रहता था। इसका काम कि सी भी योजना पर काम शुरू कराना, शुरू काम को समय पर पूरा कराना और जो काम पूरा हो चुका हो, उसे समय पर विधिवत् लागू करना और उसके विकास एवं रख-रखाव का प्रबंध कराना था।

ऐसा माना जाता है कि अशोक के शिलालेखों और मुद्रालेखों में जिस नगरव्यावहारिक का उल्लेख मिलता है वही पौरव्यावहारिक था। नगर न्याय प्रशासन की उनकी जिम्मेदारी थी। विभिन्न मंडलों के साम्राज्यों को प्रांतों में बाँटा गया था। उनमें से प्रत्येक प्रांत के सरकार के मुखिया को राष्ट्रपाल (गवर्नर) कहा जाता था। अंतपाल सीमाओं की जिम्मेदारी सँभालनेवालों का मुखिया था। अशोक के शिलालेखों के अनुसार, उनकी जिम्मेदारियों में से एक सीमा क्षेत्रों में वन्य जनजातियों के कल्याण और विकास की जिम्मेदारी सौंपी जाती थी। उनके लिए वन्य सीमा क्षेत्रों में घर बनाने की भी व्यवस्था करनी होती थी। राज्य की तरफ से हस्तशिल्पकारों को रोजगार दिया जाता था। सामान्यतया अनुमान लगाया जाता है कर्मांतिक इनके प्रभारी होते थे। संभवत: प्रांत के लिए नायक की नियुक्ति की जाती थी और वह पुलिस बल का प्रमुख होता था।

चौथी श्रेणी के अधिकारियों में प्रदेशतर या जिला अधिकारी, श्रेणी मुखिया या सहकारी व्यवसाय के प्रमुख और मुखिया या सेना के चारों समूह के प्रमुख होते थे। इनमें से सभी को सालाना 8,000 पण वेतन दिया जाता था। प्रदेशतर की जिम्मेदारी राजस्व वसूली के लिए समाहर्त्र और स्थानीक के बीच संबंध स्थापित करना था। इसके

अलावा उसकी जिम्मेदारी आपराधिक न्याय (कंटकशोधन) की तरह होती थी। श्रेणीमुख संभवत: हस्तशिल्प तथा व्यापारियों की सहकारी समितियों के प्रमुख होते थे। वे संभवत: सेना के विभिन्न अंगों की बटालियन या रेजिमेंट के कैप्टन होते थे। इन अधिकारियों के अतिरिक्त वनपाल या वन अधिकारी और अध्यक्ष या विभिन्न अधिकारियों के प्रमुख होते थे। इसके अलावा अधिकारियों के आचरण और उनके कामकाज को देखने के लिए और उसकी जाँच के लिए गुप्तचरों का नेटवर्क होता था।

चाणक्य ने तीन प्रकार के दूतों का उल्लेख किया है। इनमें से विदेशों में भेजे जानेवाले दूत को नि:सस्त्रार्थ यानी एंबेसडर कहा जाता था। राजा की तरफ से उसे पूरे अधिकार देकर भेजा जाता था। जिन दूतों को सीमित अधिकार देकर भेजा जाता था, वे परिमितार्थ या व्यापार मामलों के प्रभारी होते थे। तीसरे दर्जे के दूत सिर्फ राजकीय पत्रों को ले जाते थे और उन्हें 'शासनाहर' कहा जाता था।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्यकाल में अफसरशाही और व्यवस्थित शासन व्यवस्था का प्रसार हुआ था। हालाँकि यह माना जाता है कि मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पहले ही कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' की रचना कर ली थी। लेकिन चंद्रगुप्त के समय में प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने इस पुस्तक के विचार लागू किए होंगे।

छह प्रमुख प्रशासनिक विभाग

चंद्रगुप्त के शासनकाल में साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था मुख्यतया छह प्रमुख विभागों की देखरेख में थी—

1.सैनिक प्रशासन

2.नगरपालिका प्रशासन

3.ग्रामीण प्रशासन

4.प्रांत व्यवस्था

5.वित्त

6.कानून और न्याय

सैनिक प्रशासन

मौर्य साम्राज्य में सैनिक प्रशासन सुव्यवस्थित तथा परिपूर्ण था। मौर्यकाल में विशाल स्थायी सेना थी और उसे व्यवस्थित रखने के लिए सैनिकों को नियमित रूप से वेतन दिया जाता था। साथ ही राजाओं की तरफ से उन्हें हथियार और युद्ध सामग्रियाँ मुहैया कराई जाती थीं। मेगस्थनीज के 'प्लिनी' के अनुसार, चंद्रगुप्त की सेना में 6 लाख पैदल सैनिक, 30 हजार घुड़सवार और 9 हजार हाथी शामिल थे। इसके अलावा उनकी सेना में 8 हजार रथ थे। प्रत्येक महारथी के रथ में दो या चार घोड़े जुते रहते थे और उस पर सारथि के अतिरिक्त दो सशस्त्र सैनिक चलते थे। हाथी पर महावत के अतिरिक्त 4 निशानची रहते थे। इस प्रकार हाथियों के साथ लगभग 36,000 और रथों के साथ लगभग 24,000 सैनिक चलते थे। इस प्रकार चंद्रगुप्त के कुल सैनिकों की संख्या 6,90,000 थी। इस तरह पूरे साम्राज्य में सैनिकों की छावनी होती थी। कहा जाता है कि इतनी बड़ी सेना मुगलों के पास भी नहीं थी।

सेना के सर्वोच्च पदाधिकारी को सेनापति (कमांडर-इन-चीफ) कहा जाता था और वह किसी भी विद्रोह का दमन करने के लिए सेना का नेतृत्व करता था। युद्ध के समय वह राजमहल से बाहर निकलकर सेना का नेतृत्व करता था। मेगस्थनीज के अनुसार, सेना के प्रशासन के लिए एक स्थायी युद्ध-कार्यालय था। वहाँ 30 सदस्यों का आयोग था, जिसे 6 बोर्डों में बाँटा गया था और प्रत्येक बोर्ड में 5 सदस्य होते थे। चाणक्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, इन बोर्ड पर सेना के चारों विभागों की जरूरतों को पूरा करना और उनकी देखभाल करने का दायित्व था।

पहला बोर्ड नौ-सेना का संचालन करता था। वह नावाध्यक्ष के रूप में जाना जाता था। उस पदाधिकारी का काम

समुद्री जहाज से जुड़ी विभिन्न जिम्मेदारियों का निर्वहण करना होता था, जैसे—यात्रियों के लिए नाव की व्यवस्था करना, व्यापारियों से चुंगी वसूलना, संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करना और हिमश्रिकों या समुद्री डाकुओं को नेस्तनाबूद करना आदि। इन जहाजों की देखरेख प्रांत की तरफ से की जाती थी। नदियों में नावों को चलाना प्रतिबंधित था, लेकिन समुद्र में ही जोखिम उठाना उनका मुख्य काम था।

दूसरा बोर्ड या उप-विभाग सेना के लिए यातायात की देखभाल करता था। उसमें बैलगाड़ियों के प्रभारी की वह मदद लेता था। उसे गोध्यक्ष कहा जाता था। इन बैलगाड़ियों से युद्ध में इस्तेमाल होनेवाले हथियार, सिपाहियों (सैनिकों) के लिए भोजन सामग्री, पशुओं के लिए चारा तथा सैनिकों के लिए अन्य उपयोगी सामग्रियाँ भेजी जाती थीं।

तीसरा उप-विभाग पैदल सेना का था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार, संभवत: इसके प्रभारी पत्याध्यक्ष के साथ मिलकर काम करते थे। पैदल सैनिक समान आकार के धनुष (कमान) से लैश होते थे। सैनिक कमान को धरती पर रखकर काफ जोर से तीर चलाते थे। कहा जाता है कि वे बाएँ पैर से जमीन पर दबाव डालते थे और काफी पीछे तक तीर को खींचकर चलाते थे। तीर इतनी तेजी से गुजरता था कि उसे रोकना किसी के वश में नहीं होता था। ये तीर ढाल और कवच को बेधते हुए शरीर के अंदर प्रवेश कर जाते थे। सैनिकों के बाएँ हाथ में बैल के मोटे चमड़े के ढाल होते थे। कुछ सैनिक बरछियों से भी लैस होते थे, जबकि उनके पास तीर-कमान होते थे। सभी सैनिकों के पास चौड़ी और धारदार तलवारें होती थीं। वे लगभग तीन हाथ लंबी होती थीं। युद्ध के समय जब दुश्मनों से करीबी सामना होता था, ऐसी तलवारें उपयोग में लाई जाती थीं।

चौथे उप-विभाग में घुड़सवार सेना थी। इसके प्रमुख को अश्वाध्यक्ष कहा जाता था। प्रत्येक घुड़सवार के पास दो नश्तर और छोटी ढाल होती थी। पैदल सैनिक हथियार अपने साथ लेकर चलते थे। कंबोज और सिंधु के घोड़ों को बेहतर नस्ल का माना जाता था।

पाँचवाँ और छठा उप-विभाग रथों व हाथियों का था। उनके प्रभारी को रथाध्यक्ष और हस्त्याध्यक्ष कहा जाता था। हाथियों और घोड़ों के लिए राजकीय अस्तबल होते थे। अस्तबल ही राजकीय शस्त्रागार होता था। युद्ध से लौटे सैनिक यहीं हथियार और हाथी-घोड़े जमा कराते थे।

चंद्रगुप्त के शासनकाल में प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ थी। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार, नगरों के प्रशासन की जिम्मेदारी नागरक (नगर पदाधिकारी) के पास होती थी और उनके काम में स्थानीक व गोप सहायता करते थे। गोप पर एक निश्चित संख्या के परिवारों की जिम्मेदारी थी, जबकि स्थानीक गोपों के काम पर निगरानी रखते थे। छोटे शहरों की प्रशासनिक व्यवस्था पर यह प्रणाली लागू थी। मेगस्थनीज के अनुसार, मगध की राजधानी पाटलिपुत्र सहित अन्य महानगरों, जैसे तक्षशिला और उज्जैन, में भी प्रशासनिक व्यवस्था लगभग इसी प्रणाली पर आधारित थी।

नगरपालिका प्रशासन

चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य काल में स्थानीय नगर प्रशासन के कुल छह उप-विभाग थे। प्रत्येक विभाग में 5 सदस्य होते थे। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में कुछ अध्यक्षों का उल्लेख किया है, जिनकी जिम्मेदारियाँ इन उप-विभागों की कार्यप्रणाली से जुड़ी थीं। इसमें पौतावध्यक्ष अथवा माप-तौल अधिकारी, पण्याध्यक्ष अथवा व्यापार पदाधिकारी तथा शुल्काध्यक्ष अथवा चुंगी और कर अधिकारी भी थे। इसी प्रकार मेगस्थनीज द्वारा अंतिम तीन उप-विभागों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक उप-विभाग का संचालन उनके अधिकारियों के नेतृत्व में होता था।

पहले उप-विभाग पर उद्योग-कला से जुड़े मामलों की देखभाल करने की जिम्मेदारी थी। इस विभाग के सदस्य

कर्मचारियों (शिल्पकारों) की मजदूरी तय करते थे और उनके कामों का आकलन करते थे। शिल्पकार सरकारी कर्मचारी होते थे और यदि कोई कर्मचारी आँख या हाथ से लाचार हो जाता था तो उसे आर्थिक क्षतिपूर्ति भत्ता दिया जाता था।

दूसरे उप-विभाग की जिम्मेदारी विदेशियों पर नजर रखना, उनकी देखभाल करना और उनकी जरूरतों को पूरा करना थी। इस विभाग का काम विदेशी मेहमानों के ठहरने, उनके खाने-पीने, घूमने आदि का प्रबंध करना और जरूरत पड़ने पर उनके लिए चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना था। प्रांत में रहनेवाले किसी विदेशी की मौत हो जाने पर सम्मानपूर्वक उसका अंतिम संस्कार करना और उसकी संपत्ति उपयुक्त उत्तराधिकारी को सौंपने की जिम्मेदारी भी इसी विभाग के दायरे में आती थी। इससे स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त के शासनकाल में विदेशों तक राजनीतिक व आर्थिक संबंध मजबूत और व्यवस्थित थे।

तीसरा उप-विभाग नगरपालिकाओं के समान प्रांत में प्रतिदिन के जन्म और मृत्यु का लेखा-जोखा रखता था। व्यवस्थित तरीके से इसे रजिस्टर में पंजीकृत किया जाता था। ऐसा करने का मकसद इन आँकड़ों की सहायता से कर वसूली को आसान बनाना तो था ही, राजा के पास जनसंख्या का पूरा ब्योरा भी होता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त का राज्य-प्रबंधन काफी प्रगतिशील और सुव्यवस्थित था।

चौथा उप-विभाग राजधानी में वाणिज्य और व्यापार पर नियंत्रण रखता था। यह विभाग बाहर से आए हुए माल पर चुंगी वसूल करता था। यह विभाग व्यापार करने के लाइसेंस भी जारी करता था। इसके लिए दोगुना लाइसेंस टैक्स चुकाना पड़ता था। बिना कर चुकाए व्यापार करनेवालों को दंडित किया जाता था।

पाँचवें उप-विभाग की जिम्मेदारी निर्मित वस्तुओं के व्यापार की देखभाल करना था। नए और पुराने सामान को अलग-अलग बेचा जाता था। दोनों को मिलाकर बेचनेवालों को जुर्माना भरना पड़ता था। 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित है कि पुराने सामान को बेचने के लिए विशेष अनुमति लेनी होती थी।

छठा विभाग विक्रय कर वसूल करता था। यह कर कुल लाभ का दसवाँ भाग होता था। यदि कोई कर के भुगतान में बेईमानी या धोखाधड़ी करता था तो उसे मृत्युदंड तक की सजा दी जाती थी। खासकर ऐसा तब किया जाता था जब बड़ी राशि की हेरा-फेरी की जाती थी। इसके साथ ही कर चोरी के मामले में सख्त जुरमाना भी लगाया जाता था। इसके साथ ही नगरपालिका आयोग के सदस्यों की जिम्मेदारी थी कि वे बाजारों, मंदिरों, बंदरगाहों को और जन-कल्याण से जुड़ी अन्य सुविधाओं को उपलब्ध कराएँ।

ग्रामीण प्रशासन

मौर्य साम्राज्य में ग्रामीण प्रशासन सुदृढ़ था। मेगस्थनीज के शब्दों में कहें तो—

''राजधानी के बड़े अधिकारियों में से कुछ नदियों, जमीन की नपाई आदि के कामों की जिम्मेदारी सँभालते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से नहरों में पानी सप्लाई कराना भी इन्हीं अधिकारियों की जिम्मेदारी होती थी। उन्हें ही शिकारियों को पुरस्कृत या दंड देने का अधिकार दिया गया था। वे ही कर वसूलते थे और लकड़ी काटनेवालों, बढ़ई, लुहार और अन्य पर निगरानी रखते थे। वे सड़क बनवाने का काम करते थे और सड़क पर दूरी दरशाने के लिए स्तंभ लगवाना उन्हीं की जिम्मेदारी होती थी।''

इससे स्पष्ट होता है कि मौर्य शासनकाल में विकास पर बहुत जोर दिया जाता था। एक साम्राज्य से दूसरे तक बेहतर आवागमन के लिए अच्छी और व्यवस्थित सड़कें बनाई जाती थीं। जंगलों, खदानों, कृषि तथा सिंचाई के मामले में व्यवस्थित नियम बनाए गए थे। जंगल मनुष्यों के लिए हमेशा सहायक रहा है। जंगलों से न सिर्फ लकड़ी मिलती है बल्कि इससे पर्यावरण शुद्ध और संतुलित रहता है। मौर्य शासक इसे भलीभाँति समझते थे और जंगल

को महत्त्व देते थे। मेगस्थनीज के अनुसार, लकड़हारे, बढ़ई तथा जंगल और लकड़ी से जुड़े पेशेवालों पर नजर रखने तथा वनों की सुरक्षा के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति की गई थी, जिसे 'वनपाल' कहा जाता था। वे जंगलों के प्रभारी होते थे।

साम्राज्य के विकास के लिए खनन और खनिज संपदाओं की विशेष जरूरत थी। मौर्य शासक इसे भलीभाँति जानते थे। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में इसका उल्लेख किया है। उन्होंने 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित किया है कि खजाने के स्रोत और खदानों की जिम्मेदारी सँभालने के लिए एक विशेष अधिकारी होता था। वह अकराध्यक्ष कहलाता था।

इसी तरह मौर्य शासनकाल में कृषि को मुख्य उद्योग माना जाता था। मौर्य शासक कृषि को बढ़ावा देने पर विशेष ध्यान देते थे। इस उद्योग की देखभाल के लिए जिस अधिकारी को विशेषाधिकार दिया जाता था, वह 'सीताध्यक्ष' कहलाता था। किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए मौर्य शासन ने शिकारियों को पुरस्कृत करने और सजा देने का नियम बनाया था। किसान जो बीज खेतों में डालते थे, पक्षी उसे चुग लेते थे। मेगस्थनीज के अनुसार, शिकारी किसानों को नुकसान पहुँचानेवाले जंगली प्राणियों का भी शिकार कर डालते थे। इस तरह शिकारी किसानों के मददगार होते थे। दूसरी तरफ, किसानों की जिम्मेदारी कृषि के माध्यम से साम्राज्य को आत्मनिर्भर बनाना थी। इसके अलावा बंजर जमीन को उपजाऊ बनाने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की होती थी। शिकारी विभिन्न दृष्टिकोण से किसानों के सहायक भी होते थे।

किसानों के अन्य सहायकों में नहर और नालों की व्यवस्था का भी प्रमाण मिलता है। मौर्य शासनकाल में सिंचाई व्यवस्था बेहतर थी। शिलालेखों से भी इसका प्रमाण मिलता है। शक क्षत्रप के जूनागढ़ अभिलेख में 150 ई.पू. काठियावाड़ में सुंदर झील (सुदर्शन) का प्रमाण मिलता है। सौराष्ट्र के राष्ट्रपाल पुष्पगुप्त चंद्रगुप्त के शासनकाल में थे। सिंचाई व्यवस्था के लिए उन्होंने स्थानीय किसानों पर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने इसके लिए छोटे-छोटे नालों का निर्माण कराया और बड़ा तालाब बनवाकर उसमें सिंचाई के लिए जल-संग्रह की व्यवस्था की। चंद्रगुप्त के पौत्र अशोक के शासनकाल में नालियों का उल्लेख मिलता है।

प्रांत व्यवस्था

मौर्यकाल में बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था के लिए पूरे साम्राज्य को चार क्षेत्रों में बाँटा गया था। प्रत्येक क्षेत्र को विभिन्न प्रांतों में बाँटा गया था। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत के गृह प्रांत थे। ये प्रांत शासक के सीधे देखरेख में आते थे। इसके लिए साम्राज्य में तीन प्रतिनिधि शासक होते थे। उत्तर-पश्चिमी प्रांतों का मुख्यालय तक्षशिला था। वहाँ से अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पंजाब, कश्मीर और सिंध पर नियंत्रण रखा जाता था। पश्चिमी प्रतिनिधि शासक का मुख्यालय उज्जैन था और उसका नियंत्रण मालवा व गुजरात पर था। दक्षिण भारत के प्रतिनिधि-शासक का मुख्यालय सुवर्णगिरि था। यह संभवत: रायचूर जिले में था। यह इन दिनों कर्नाटक राज्य में आता है। इस क्षेत्र के प्रतिनिधि शासक कुमार या आर्यपुत्र कहलाते थे और वे सम्राट् के राजकुमार (भावी सम्राट्) होते थे। प्रत्येक क्षेत्र को खास संख्याओं में राज्यों में बाँटा गया था। प्रत्येक राज्य के प्रशासनिक प्रधान को राष्ट्रपाल (गवर्नर) कहा जाता था। जूनागढ़ शिलालेख में चंद्रगुप्त मौर्यकाल के राष्ट्रपाल का प्रमाण मिलता है। पुष्पगुप्त का प्रशासन सौराष्ट्र प्रांत में था, इसका प्रमाण मिलता है। मौर्य साम्राज्य के सामंती प्रांतों की तरह मुगल बादशाह अकबर ने भी अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में इसे लागू किया था।

वित्त व्यवस्था

सर्वविदित है कि राजा की सबसे बड़ी शक्ति उसकी वित्तीय क्षमता और व्यवस्था है। चंद्रगुप्त मौर्य ने भी अपने

साम्राज्य की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ और सुनियोजित बनाया था। विभिन्न स्रोतों से कर वसूली के लिए समाहर्त्र मुख्य पदाधिकारी होता था। उसकी जिम्मेदारी वर्तमान के कलेक्टर के समान होती थी। मौर्यकाल में वित्त व्यवस्था का मुख्य आधार भू-राजस्व था। एक स्थान पर कौटिल्य ने उल्लेखित किया है कि कानून निर्माताओं को कु ल उत्पादन का 1/6 हिस्सा दिया जाता था। कहीं-कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि कुल उत्पादन का 1/4 हिस्सा सरकार का होता था।

यह अनुपात साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में मिट्टी की उर्वरा क्षमता और किसानों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता था।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त के शासनकाल में राजस्व के जिन स्रोतों का उल्लेख किया है, उनमें निम्न प्रमुख हैं—

1. अन्य करों को पानी और जमीन के साथ जोड़कर किसानों पर इसका भार डाला गया था।
2. शहरी इलाकों में गृह कर लगाया गया था।
3.वनों और खनिजों से भी राजस्व की प्राप्ति होती थी।
4.सीमा शुल्क, चुंगी, सड़क कर आदि भी लगाए जाते थे।
5.शिल्पकारी, काश्तकारी, व्यवसाय आदि से जुड़े लोगों को लाइसेंस लेना पड़ता था। इसके लिए शुल्क वसूला जाता था।
6.कानूनी प्रक्रिया के एवज में कर से प्राप्त राजस्व।
7.जिस संपत्ति का कोई मालिक नहीं हो उससे प्राप्त राजस्व।

पतंजलि के साहित्य से स्पष्ट होता है कि स्वर्ण-निर्मित मूर्तियाँ मौर्यकाल में ही पूजी जाती थीं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि शायद मौर्यकाल में राजा मंदिर बनवाते थे और वहाँ दर्शन या पूजा करनेवाले इन मंदिरों में मुद्रा व आभूषण अर्पित करते थे, जो राजा के खजाने में जमा होता था। इसके अतिरिक्त आपात स्थिति में साम्राज्य के संपन्न लोग अपनी संपत्ति का कुछ हिस्सा प्रांतों के प्रशासक को सौंप देते थे, ताकि उसका उपयोग हो सके।

मौर्य शासनकाल में निम्न मदों में मुख्य रूप से खर्च किया जाता था—

1.राजा, न्यायालय और राजकीय परिवार की सारी व्यवस्थाओं पर किया जानेवाला खर्च।
2.सभी उच्च पदाधिकारियों, अन्य पदाधिकारियों और सरकारी कर्मचारियों को प्रतिमाह वेतन देने में।
3.सेना के लिए वेतन और उनके हथियारों की व्यवस्था करने में।
4.जन-सेवा के लिए भवन-निर्माण, सड़क, सिंचाई, किलों का निर्माण करना, शस्त्रागार और आवश्यक शस्त्रों का इंतजाम करना आदि।
5.सैनिकों के परिवारों का पालन-पोषण एवं उन्हें आवश्यक साधन मुहैया कराने और नागरिक सेवा से जुड़े अधिकारियों की मृत्यु के बाद उनके आश्रितों की देखभाल करने में खर्च।
6.अभावग्रस्त और बेरोजगार परिवारों की देखभाल करने में।
7.चोरी होने पर क्षतिपूर्ति करने में।
8.उद्योग, खनिज और अन्य व्यापार पर होनेवाला खर्च।
9.प्रांत के अधीनस्थ शिल्पकारों को वेतन देने में।
10.विभिन्न धार्मिक संस्थानों को अनुदान देने में।

अधिकारियों की सहायता के लिए गुप्तचर होते थे। गुप्तचर प्रणाली से लोग हमेशा नफरत करते रहे हैं और चंद्रगुप्त के शासनकाल में भी ऐसी ही बात थी। लेकिन इसमें कुछ अच्छी बातें भी थीं। भारतीय राजनीतिज्ञ मानते हैं कि

किसी भी राजा को प्रजा की इच्छाओं के विरुद्ध शासन नहीं करना चाहिए। इसलिए गुप्तचर सिर्फ अपराधियों का पता लगाने भर के लिए नहीं बल्कि राजा के प्रति प्रजा का नजरिया जानने के लिए भी रखे जाते थे। हालाँकि गुप्तचर प्रणाली का नुकसान यह भी रहा है कि राजमहल में रहनेवाले भी उनका इस्तेमाल कर लेते थे। गुप्तचरों पर राजा भरोसा करते थे और वे राजा के विश्वासपात्र होते थे।

कानून और न्याय व्यवस्था

हालाँकि मेगस्थनीज ने किसी लिखित कानून व्यवस्था पर अपनी सहमति नहीं जताई है, परंतु सच्चाई यह थी कि कानून के चार स्तंभों में से एक धार्मिक पुस्तक थी। चाणक्य के अनुसार, अन्य तीन कानून-स्तंभ भी थे। समय-समय पर राजा पेश मामलों के आधार पर कानून में फेर-बदल करते थे। इन चार स्तंभों में से जब रिवाज और धर्म के बीच अथवा समझौता और धर्म के बीच संघर्ष होता था तो धर्म का कानून अन्य दो को रौंद डालता था। लेकिन जब धर्म और तर्क में संघर्ष होता था तो तर्क को ही महत्त्व दिया जाता था। राजाज्ञा जारी करने की परिस्थिति में राज्य के विद्वानों से परामर्श लिया जाता था। वे तार्किक कानून को आधार मानकर विचार व्यक्त करते थे, लेकिन कानून के चारों स्तंभों में धार्मिक ग्रंथ, करार, रिवाज और राजाज्ञा को शामिल किया जाता था। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार, कानून के इन चारों स्तंभों में से अंतिम यानी राजाज्ञा सर्वश्रेष्ठ माना जाता था।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में न्यायिक प्रशासन के दो आधार थे। प्रथम दृष्टया मामलों में ग्राम पंचायत फैसला करती थी, जबकि दूसरे न्यायालय, राजवंश, सहकारी संस्था और नगर निगम शामिल थे। राज्य में न्यायालय को दो विभागों में बाँटा गया था—धर्मस्थीय और कंटकशोधन, जो क्रमशः वर्तमान नगरीय व्यवस्था और अपराध न्यायालय थे। न्यायालयों के मुख्यालय जनपदसंधि, संग्रहण, द्रोणमुख और स्थानीय थे जिनमें क्रमशः 2, 10, 400 और 800 गाँवों का न्याय होता था।

धर्मस्थीय न्यायालय में 3 धर्मस्थ (न्यायाधीश धार्मिक मामलों के विद्वान् होते थे) और 3 अमात्य होते थे।

नागरिक कानून के अंतर्गत निम्न मुख्य विभाग थे—

1.उत्तराधिकार,

2.विवाह और महिलाओं की संपत्ति,

3. विक्रय, सीमा और घर से जुड़े विवाद,

4. ऋण,

5. जमा,

6. दासता,

7.श्रम और ठेका,

8. खरीद-बिक्री,

9. हिंसा,

10. मानहानि,

11. आक्रमण,

12. जुआ।

चंद्रगुप्त के शासनकाल में धार्मिक कानून का भी अपना विशेष महत्त्व था।

कंटकशोधन (अपराध से मुक्ति दिलाना) न्यायालय में तीन धर्मस्थ और तीन अमात्य होते थे। इस न्यायालय की जिम्मेदारी थी कि वह राज्य और जनता को असामाजिक तत्त्वों अथवा कंटक समान लोगों से राहत दिलाए। चोरी,

हत्या, लूट, बलात्कार, डकैती, धोखाधड़ी जैसे मामलों को राजा तक पहुँचाने में इसी न्यायालय का योगदान होता था। इसके अतिरिक्त इस न्यायालय का काम शिल्पकारों को सुरक्षा प्रदान करना और उपभोक्ताओं को शिल्पकारों व व्यापारियों की ठगी से बचाना होता था। अपराधों की जड़ तक जाने में गुप्तचरों की मदद ली जाती थी। न्यायालय की व्यवस्था पीढ़ी के आधार पर थी। यानी, यदि कोई पक्ष फैसले पर असंतुष्टि व्यक्त करता था तो निचली अदालत के मामले को उच्च अदालत तक पहुँचाया जाता था। अंतिम अधिकारी राजा से जुड़ा होता था। मेगस्थनीज के अनुसार, मौर्यकाल में न्याय के लिए जनता द्वारा राजा तक मामले पहुँचाने के कई उदाहरण मिलते हैं। यही कहा जा सकता है कि न्यायिक फैसले से जनता संतुष्ट नहीं होती थी और राजा के पास अपने मामले लेकर पहुँचती थी।

दंड या जुर्माना लगाना

दोषियों पर जुर्माना लगाया जाता था। दोषियों को उनकी मूल और उसकी प्रकृति के आधार पर तीन तरह से दंडित किया जाता था। पहली श्रेणी में दोष साबित होने पर 96 पण, उसके बाद 500 पण और उसके बाद 1,000 पण जुर्माना लगाने का कानून था। अपराध करनेवालों को कड़ी सजा दी जाती थी। इसमें पिटाई, सिर के बाल मूँड़ना, कैद, अंग-भंग तथा मृत्युदंड तक शामिल था। हिंसा और अनैतिक कर्म जैसे हत्या, बलात्कार, चोरी, धोखाधड़ी और झूठी गवाही देने जैसे मामलों में ऐसा दंड दिया जाता था। इनमें से कुछ अपराधों को अलग-अलग श्रेणियों में रखकर अपराधियों को दंडित करने का प्रावधान था। जैसे 50 पण तक मूल्य की संपत्ति चुरानेवाले को उच्च दंड दिया जाता था, लेकिन इससे अधिक मूल्य की संपत्ति चोरी करने पर उसे वध या शारीरिक दंड दिया जाता था। यह सजा बढ़ाकर मृत्युदंड भी दिया जाता था, यदि किसी तरह के गंभीर अपराध की पुष्टि होती थी।

झूठ बोलना, धोखा देकर कर नहीं चुकाना आदि मामलों में चोर के समान दंड दिया जाता था। यदि कोई किसी के शरीर के किसी अंग को चोट पहुँचाता था तो उसे अंग-भंग का दंड दिया जाता था। यदि कोई अपराधी किसी शिल्पकार का अंग-भंग करता था तो उसे मृत्युदंड दिया जाता था। फिर भी, मौर्य शासनकाल में दंड का फैसला काफी सावधानी और जाँच-परखकर सुनाया जाता था।

मेगस्थनीज के अनुसार, चंद्रगुप्त के समय में पाटलिपुत्र की जनसंख्या लगभग 4 लाख थी। रोजाना की चोरी का हिसाब-किताब बैठाया जाए तो वह राशि 200 ड्रैक्का[1] अथवा 8 पौंड स्टर्लिंग[2] से ज्यादा नहीं होती थी।

चाणक्य ने 'धर्मशास्त्र' में उल्लेखित किया है कि जब किसी नागरिक की संपत्ति की डकैती या चोरी हो जाती थी तो राजा अपने खजाने से उसकी भरपाई नहीं करते थे। साथ ही, ऐसी व्यवस्था थी कि किसी खास अवसर पर कैदियों को मुक्त कर दिया जाता था। वह खास अवसर होता था राजा का जन्मदिन या फिर राजा की नई उपलब्धि आदि। चाणक्य ने उल्लेखित किया है—जब राजा किसी नए राज्य पर विजय प्राप्त करते थे, जब कोई उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठता था या फिर किसी राजकुमार का जन्म होता था तो कै दियों को रिहा कर दिया जाता था।

❑

मौर्यकाल में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति

विभिन्न ग्रंथों, शिलालेखों तथा अन्य साक्ष्यों से पता चलता है कि चंद्रगुप्त के शासनकाल में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। प्रजा में बेहतर संबंध थे। धार्मिक अनुष्ठानों पर किसी तरह की पाबंदी नहीं थी। आर्थिक विषमता की खाई ज्यादा गहरी नहीं थी। प्रजा सुखी जीवन व्यतीत करती थी।

धार्मिक स्थिति

भारत विभिन्न धर्मों की जन्म-स्थली है। सम्राट् अशोक के सातवें स्तंभ से मौर्यकाल की धार्मिक स्थिति का पता चलता है। उस समय धर्म की चार श्रेणियाँ थीं—संघ (बौद्ध धार्मिक स्थल), ब्राह्मण, निर्ग्रंथ और आजीवक। इनमें निश्चय ही संघ बौद्ध धर्म से, जबकि ब्राह्मण वैदिक धर्म से संबंधित थे। निर्ग्रंथ जैन धर्म से, जबकि आजीवक के अनुयायी तपस्वी और संत होते थे। लंबे समय से अब वे विलुप्तप्राय हैं।

ब्राह्मण (वैदिक धर्म)

वैदिक धर्म सबसे प्राचीन है और चंद्रगुप्त मौर्य के काल में इसका काफी प्रचार-प्रसार था। सदियों बाद वैदिक धर्म प्रमुख शाखाओं में बँट गया था—संस्कार कृत्य, तत्त्वज्ञान संबंध और आस्तिक प्रवृत्ति। हालाँकि ये सभी पूर्णरूप से एक-दूसरे से अलग नहीं थे।

संस्कार कृत्य

वैदिक धर्म की तीन प्रमुख शाखाओं में से संस्कार का अपना विशेष महत्त्व था। इसमें कर्म यानी संस्कार पर विशेष जोर दिया जाता था। इससे जुड़े लोग इंद्र, वरुण, अग्नि व अन्य देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करते थे। ब्राह्मण स्रोतसूत्र, बौद्ध धर्मसम्मत और मेगस्थनीज के उल्लेखों से यज्ञ के धार्मिक मत का प्रमाण मिलता है। अश्वमेध और राजसूय यज्ञ सिर्फ राजा करते थे। इसके अतिरिक्त चौदह अन्य यज्ञ किए जाते थे, जो 'स्रोत यज्ञ' कहलाते थे। इनमें से सात हविर्यज्ञ थे, जिन्हें 'अग्निहोत्र' कहा जाता था। अन्य सात सोम यज्ञ कहलाते थे, जिन्हें वाजपेय की संज्ञा दी जाती थी। इनमें से कई यज्ञ ऐसे होते थे, जिनमें पशुओं की बलि दी जाती थी। यज्ञ करानेवालों में अधिकांश राजा, सम्माननीय व्यक्ति, अमीर ब्राह्मण, बड़े व्यापारी होते थे और वे समाज में बेहतर स्थान पाने के लिए भी यज्ञ कराते थे। इन यज्ञों को संपन्न कराने के लिए चार पुरोहितों की आवश्यकता होती थी। किन्हीं-किन्हीं यज्ञों को संपन्न कराने में 16 पुरोहितों की जरूरत होती थी। ये पुरोहित ब्राह्मण परिवार के होते थे और संस्कार यज्ञ कराने के लिए यजमानों से दक्षिणा के रूप में ऊँची कीमत वसूलते थे।

मेगस्थनीज के उल्लेखों से प्रमाण मिलता है कि मौर्यकाल में वैदिक धर्म के पालन के लिए समाज के अमीर लोग यज्ञ कराते थे। ब्राह्मण पुरोहित विद्वान् होते थे। आम लोग उनसे यज्ञ करवाते थे और उसकी एवज में उन्हें बेशकीमती उपहार, दक्षिणा और विशेषाधिकार प्रदान करते थे। यज्ञ करानेवाले अपने पुरोहितों की खूब खातिरदारी और सम्मान करते थे। मेगस्थनीज के साहित्य से जानकारी मिलती है कि चंद्रगुप्त मौर्य भी समय-समय पर विशेष परिस्थितियों में यज्ञ कराते थे। खासकर महल को छोड़कर जब वे कहीं जाते थे तो यज्ञ कराते थे।

वैदिक धर्म की तीसरी शाखा के अनुयायियों की संख्या काफी अधिक थी। मौर्यकाल में इसे आस्तिक शाखा कहा जाता था। इस शाखा के अनुयायी ईश्वर की भक्ति में आस्था रखते थे। वे इसे ही अपनी मुक्ति का आधार भी मानते थे। संस्कृत के महान् वैयाकरण पाणिनि ने अपनी पुस्तक में ई.पू. पाँचवीं सदी में वासुदेव और उनके विश्वासी मित्र अर्जुन का जिक्र किया है। दोनों अभिलेखों का वर्णन ईसा पूर्व घसुंडी और नंदघाट से मिलता है, जिसमें कहा गया है कि वासुदेव के भाई संकर्षण उनके साथ मिलकर पूजा करते थे। छांदोग्य उपनिषद् में वासुदेव कृष्ण को देवकी

का पुत्र बताया गया है और वे ऋषि अंगिरस के शिष्य थे। वे दोनों महान् योद्धा थे और ऐसे संत भी थे, जो एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। इसे स्थापित करने के लिए 'श्रीमद्भागवत' नामक ग्रंथ की रचना की गई थी। मौर्यकाल की स्थापना के बाद विष्णु के अवतार के रूप में उनका नाम प्रमाणित किया गया और उनकी पहचान ब्रह्मांड के संरक्षक के रूप में हुई थी।

यूनान के राजदूत ने भारत में अपने देश के नायक के रूप में हरकुलिस की चर्चा की थी। माना जाता है कि वह कृष्ण से जुड़ा हुआ था। उसने अपने विवरण में जिन बातों का उल्लेख किया था, वह कृष्ण की गाथा से मिलती-जुलती थी। सारी घटनाएँ भारत भूमि से जुड़ी हुई थीं। यूनानी राजदूत ने वहाँ के नायक हरकुलिस के बारे में जो कुछ कहा था, वह इस प्रकार है—''हरकुलिस को सूरासेनोई (शूरसेन), भारतीय वैदिक धर्म की दूसरी शाखा का ज्ञान था। यहाँ ज्ञान का तात्पर्य आध्यात्मिक ज्ञान से है। यह ज्ञान उपनिषद् पर आधारित था। उस समय विद्वत् समाज उपनिषद् के माध्यम से ईश्वर की प्रार्थना करता था। इसकी शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी, जिसके शिक्षक और संचालक ब्राह्मण होते थे। वे उपनिषद् के माध्यम से लोगों को उपदेश देते थे और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करते थे। सादा जीवन उच्च विचार उनके रहन-सहन का तरीका होता था। वे वैदिक यज्ञों में विशेष रुचि नहीं लेते थे। यहाँ तक कि चंद्रगुप्त के शासनकाल में चाणक्य ने भी यज्ञ अनुष्ठानों में कभी रुचि नहीं दिखाई थी। हालाँकि उन्होंने चंद्रगुप्त को अश्वमेध यज्ञ कराने के लिए प्रेरित किया था। किसी भारतीय राजा ने इस यज्ञ को नहीं कराया था।

मेगस्थनीज के अनुसार, मौर्यकाल में दो प्रकार के भारतीय दार्शनिक अथवा विद्वान् होते थे—ब्राह्मण और श्रमण। ब्राह्मण पूज्य होते थे। उन्हें देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का विशेषाधिकार प्राप्त था। वे लोगों को बताते थे कि देवी-देवता ही दुनिया के लिए नियम बनाते और उनका पालन कराते हैं। दुनिया में पानी का सबसे ज्यादा महत्त्व बताया गया था और इसे प्रदान करने का श्रेय देवताओं को जाता था। इसके साथ चार अन्य आवश्यक तत्त्व थे। पाँचवाँ तत्त्व आकाश होता था, जो स्वर्ग और तारे बनाता था। ये ब्राह्मण स्वतंत्र होते थे। उनके विचारों पर कोई अंकुश नहीं लगाया जा सकता था। यूनानी साहित्य के अनुसार, तक्षशिला के संन्यासी दंडमिस को इसका सटीक उदाहरण माना जा सकता है। सिकंदर, जो खुद को जियस का बेटा समझता था, उसने एक बार दंडमिस को आमंत्रण भिजवाया था। उसने साथ में चेतावनी भी दी थी कि यदि दंडमिस उसकी बात नहीं मानेगा तो उसे मृत्युदंड दिया जाएगा। दंडमिस ने दूत द्वारा कहलवा दिया कि सिकंदर अपने आपको जितना जियस का बेटा समझता है उतना वह भी अपने आपको जियस का बेटा समझते हैं। उसने संदेश भिजवाया कि दबाव डालकर सिकंदर नहीं बुला सकता। अगर सिकंदर को किसी चीज की जरूरत हो तो वह दंडमिस के पास आकर ले जाए। उपनिषद् में इस विचार का कुछ इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

''ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ राजा है। वह कभी गलत का हिस्सेदार नहीं बनता। वह प्रकाश, शांति, जीवन, पानी, मनुष्य के शरीर और आत्मा का निर्माता है। जब मृत्यु हो जाती है तो आत्मा स्वतंत्र हो जाता है। सिकंदर सम्मान का पात्र हो सकता है और वह नर-संहार कर सकता है या युद्ध को रोक सकता है।...सिकंदर जो चीजें मुझे प्रदान करना चाहता है, वे मेरे लिए किसी काम की नहीं हैं। लेकिन जो चीजें मुझे चाहिए और मेरे काम की हैं वे हैं पत्ते, जो मेरे घर में उपलब्ध हैं। ये पेड़ मुझे भोजन प्रदान करते हैं। मैं पानी पीता हूँ। इसका भंडार है। मैं जंगल पर निर्भर हूँ। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके लिए प्रहरी की जरूरत हो। मैं आँखें बंद करता हूँ और सपनों की सुनहरी दुनिया में खो जाता हूँ। सिकंदर मेरे सिर को काट सकता है, लेकिन मेरी आत्मा को कभी नष्ट नहीं कर सकता। मेरे मरने के बाद आत्मा परमात्मा से मिल जाएगी, जिस तरह कपड़े फट जाते हैं और दूसरे कपड़े तन को ढँक लेते

हैं। मैं सिर्फ अपने ईश्वर के समक्ष झुकता हूँ।''

दंडमिस ने इस तरह ब्राह्मण होने का बेहतर उदाहरण पेश किया था। इससे पता चलता है कि चंद्रगुप्त के शासनकाल में ब्राह्मणों की क्या स्थिति थी और उपनिषद् का क्या महत्त्व था। ब्राह्मणों का सम्मान न सिर्फ अपने देश में बल्कि विदेशों में भी होता था। तो हम पाते हैं कि मेगस्थनीज ने ब्राह्मणों के बारे में ढेर सारी जानकारियाँ दी हैं। उनके शब्दों में कहा जा सकता है—''प्राचीन काल में यूनान के विद्वानों द्वारा जो कुछ प्रकृति के बारे में कहा गया, भारतीय ब्राह्मणों ने पहले ही कह दिया था। वही सीरिया के यहूदियों ने भी कहा था।''

वासुदेव कृष्ण के अनुयायी भागवत कहे जाते थे। मध्य प्रदेश के मेसनगर में हेलोडियस के शिलालेख से प्रमाण मिलता है कि ''जनजाति ने विशेष सम्मान दिया था। मेथोरा (मथुरा) और क्लिसोबोरा (कृष्णपुरा) दो बड़े शहर उनके अधीन में थे और उनके राज्य से होकर जो नदी गुजरती थी, वह जोबेन (यमुना) थी।'' इस सिद्धांत या मत से यूनानी भी सहमत थे। दूसरी तरफ ई.पू. चौथी सदी में भारत के लोग मूर्ति-पूजा करते थे। इसके लिए वे मूर्ति बनाते थे। भारतीय वैयाकरण पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि नंद, मौर्य और शुंग के शासनकाल में कृष्ण की मूर्ति की पूजा होती थी। बताया जाता है कि जब पुरु की सेना सिकंदर पर चढ़ाई करने के लिए आगे बढ़ रही थी तो सेना आगे-आगे हरकुलिस की प्रतिमा लेकर चल रही थी। इसी प्रकार पतंजलि ने केशव यानी कृष्ण का वर्णन किया है। यह उन मूर्तियों में से थी, जिसकी पूजा मंदिरों में की जाती थी। बाद में मौर्यकाल में भी मंदिरों में केशव यानी कृष्ण की प्रतिमा होने का प्रमाण मिलता है।

संघ (बौद्ध धर्म)

चंद्रगुप्त के शासनकाल में भारत में दूसरा सबसे बड़ा धर्म था—संघ यानी बौद्ध धर्म। ई.पू. छठी सदी में बौद्ध धर्म का प्रमाण मिलता है। इसका मुख्य संदेश था—''मनुष्य अपने भविष्य का निर्माता स्वयं है।'' इस धर्म के माध्यम से लोगों को यही शिक्षा दी जाती थी। उत्तरी भारत के खास क्षेत्र में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या अच्छी-खासी थी। अजातशत्रु के शासनकाल में प्रथम धम्म सुत्त और विनय सुत्त सम्मेलन हुए थे। इसी मौके पर पहली बार बौद्ध धर्म के धार्मिक सिद्धांतों का पाठ किया गया। दूसरा सम्मेलन वैशाली में सम्राट् कालासोक के समय हुआ था। उस समय त्रिपिटक को पूरी तरह प्रस्तुत किया गया था। इसी मौके पर बौद्ध धर्मग्रंथ का संकलन किया गया था। पालि भाषा में तीन खंडों में 'त्रिपिटक' को लिखा गया था। इन खंडों के नाम क्रमशः सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक हैं। 'सुत्तपिटक' को पाँच निकायों दिघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्रनिकाय और खुदकनिकाय में बाँटा गया। अंतिम निकाय यानी खुदक में धम्मपद और जातक कथाएँ थीं। अन्य दो पिटकों को भी अलग-अलग विभागों में बाँटा गया था। अभिधम्मपिटक के अंतिम खंड को 'कथावत्थु' के नाम से जाना जाता था। यह माना जाता है कि सम्राट् अशोक के शासनकाल में इसकी रचना की गई थी। दूसरे सम्मेलन में वैशाली स्तूप पर विचार-विमर्श किया गया था। परिणामस्वरूप बौद्ध मठों के विभाजन का फैसला किया गया। इन स्तूपों के समर्थकों को महासंघिका कहा गया और जो इसके विरोध में थे, उन्हें स्थविर कहा गया था।

मेगस्थनीज ने जिन दो प्रकार के भारतीय दार्शनिकों और महापुरुषों का वर्णन किया है, उनमें ब्रैकमेन को ब्राह्मण और श्रमण को बौद्ध भिक्षु या संन्यासी समझा जाता था। श्रमण न तो शहर में और न ही घरों में रहते थे। वे जंगलों में घूमते रहते थे और जंगली पेड़ों के फल खाकर जीवित रहते थे। श्रमण पत्तों व पेड़ों की डालियों का वस्त्र की तरह इस्तेमाल करते थे। वे हथेलियों से पानी पीते थे। वे न तो शादी करते थे और न ही बच्चे पैदा करते थे। ब्राह्मण विद्वान् और बौद्ध श्रमण के अतिरिक्त दो अन्य संन्यासी या तपस्वी होते थे, जिन्हें निर्ग्रंथ और आजीवक कहा जाता था। निर्ग्रंथ का संबंध जैन धर्म से होता था और महावीर ने इसकी स्थापना की थी। निर्ग्रंथ का शाब्दिक अर्थ

बंधन-मुक्त होता है। निर्ग्रंथ किसी तरह का वस्त्र धारण नहीं करते थे। वे विश्वास करते थे कि सभी जीवों में आत्मा है और वे उन्हें सताने या दु:ख पहुँचाने को पाप समझते थे। वे मानते थे कि पौधों में भी प्राण है। बौद्ध ग्रंथों में जैन के निर्ग्रंथ का वर्णन तो मिलता ही है, मेगस्थनीज के साहित्य में भी इसका उल्लेख किया गया है। हालाँकि मेगस्थनीज ने निर्ग्रंथों के बारे में विद्वानों के सभी गुणों का उल्लेख किया, लेकिन गलती से उन्होंने इसे ब्राह्मण धर्मपंथ से जुड़ा हुआ बता दिया था। इस धर्मपंथ के बारे में मेगस्थनीज अपने शिष्यों से कहा करते थे—'भारत में ब्रैकमेन में से ऐसे धर्ममत के दार्शनिक हुए, जो स्वतंत्र जीवन जीते थे। वे आग में पके भोजन को नहीं खाते थे। वे फल खाकर जीवन की रक्षा करते थे। वे पेड़ से फलों को नहीं तोड़ते थे बल्कि जो फल नीचे गिरते थे, उसी का भक्षण करते थे। वे जीवनपर्यंत वस्त्र धारण नहीं करते थे। उनका तर्क होता था कि ईश्वर ने आत्मा की रक्षा के लिए शरीर प्रदान किया है।'

जैन ग्रंथों में जैन मंदिर का वर्णन मिलता है। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भद्रबाहु जैन मंदिर प्रधान था। कहा जाता है कि उन्होंने पूरे साम्राज्य में जैन धर्म को फैलाया था। एक बार मगध में जब अकाल पड़ा था, भद्रबाहु को उनके शिष्यों के साथ कर्नाटक में श्रवण बेलगोला भेज दिया गया था। उनकी अनुपस्थिति में मगध में जैन मंदिर के प्रधान के रूप में स्थूलभद्र की नियुक्ति कर दी गई थी। स्थूलभद्र ने इस बीच पाटलिपुत्र में निर्ग्रंथ संतों का धर्म सम्मेलन आयोजित किया और वहाँ नए जैन धर्म सिद्धांत की घोषणा की गई थी। अकाल खत्म हो जाने के बाद भद्रबाहु अपने शिष्यों के साथ मगध लौट आए थे। उन्होंने उन धर्म सिद्धांतों को बदल डाला, जिन्हें उनकी अनुपस्थिति में बनावटी ढंग से लागू किया गया था। उनके श्रवण बेलगोला में होने के दौरान कुछ जैन संतों ने वस्त्र धारण करना शुरू कर दिया था। भद्रबाहु ने ऐसा करनेवालों को दंडित किया और इस सिद्धांत को महावीर के उद्देश्यों के प्रतिकूल बताया। हालाँकि श्रवण बेलगोला के शिलालेखों में भद्रबाहु और चंद्रगुप्त का उल्लेख मिलता है, लेकिन इसका प्रमाण दसवीं शताब्दी में मिलता है। इससे माना जाता है कि यह प्रामाणिक नहीं है। हेमचंद्र के अनुसार, भद्रबाहु की मृत्यु चंद्रगुप्त के साम्राज्य के 16वें वर्ष में हुई थी। यह संभव नहीं है कि चंद्रगुप्त भद्रबाहु के साथ श्रवण बेलगोला गए होंगे।

आजीवक बौद्ध और जैन संत होते थे और ई.पू. छठी शताब्दी में उनके होने की जानकारी मिलती है। इसके संस्थापक मक्खाली घोषाल थे। मक्खाली का शाब्दिक अर्थ संस्कृत में 'मस्करिन' के समान होता है। इसका अर्थ होता है वह संत, जिसके हाथ में बाँस की छड़ी हो। आजीवक भाग्यवादी संत थे। वे न तो इनाम और न ही प्रतिकार पर यकीन करते थे। वे समझते थे कि भाग्य से ही सबकुछ होता है। मौर्यकाल में आजीवकों को भी महत्त्व दिया जाता था और वे मौर्य सम्राट् अशोक तथा उनके पौत्र के समय में सम्मानित थे। मौर्यकाल के बाद आजीवकों का अस्तित्व मिटने लगा था और धीरे-धीरे उसका नामोनिशान तक समाप्त हो गया।

सामाजिक स्थिति : मौर्यकाल में वर्ण-व्यवस्था

चाणक्य के अनुसार, मौर्यकाल में भारतीय समाज चार वर्गों में बँटा हुआ था, जिन्हें वर्ण कहा गया। वर्तमान जाति व्यवस्था की सच्चाई यह है कि जो तय है, उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता। यह व्यवस्था मौर्यकाल से ही तय है। दूसरे मामलों में इसमें लचीलापन था। मौर्यकाल में जिन चार वर्णों का उल्लेख किया गया था, वे थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें से प्रथम तीनों को आर्य का वंशज माना जाता था, जबकि चौथे वर्ण शूद्र को संभवत: विभिन्न प्रकार की जनजातियों का समूह माना जाता था। चाणक्य के अनुसार, चारों वर्णों के लिए सामाजिक आधार पर अलग-अलग जिम्मेदारियाँ और उनके विशेष पेशे तय किए गए थे। ब्राह्मणों का काम था—विद्या अध्ययन करना, शिक्षा देना, यज्ञ करना, दूसरों से यज्ञ कराना और दान लेना व देना। क्षत्रियों की जिम्मेदारी

थी—विद्या अध्ययन करना, यज्ञ करवाना, दान देना, देश की रक्षा के लिए सेना में शामिल होना आदि। वैश्यों का काम विद्या अर्जन करना, यज्ञ करवाना, दान देना, कृषि, पशुपालन तथा व्यापार करना था। शूद्रों का काम था अन्य वर्णों की सेवा करना, कृषि कार्य, यज्ञ कराना, पशुपालन और व्यापार करना। इसके अलावा काश्तकारी करना और राजदरबार में राजा के सम्मान में गायन करना उनका काम था। बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने के बाद शूद्रों ने इस धर्म को अपनाया और उन्हें शूद्र से वैश्य वर्ण अपनाने का मौका दिया गया।

एक समय ऐसा आया, जब ब्राह्मणों ने भी सेना में जाना शुरू कर दिया और कृषि, पशुपालन एवं व्यापार करना शुरू किया। क्षत्रियों ने भी समय के साथ-साथ अपनी वृत्तियों में बदलाव किए और कृषि, पशुपालन व व्यापार से जुड़ गए। वैश्य तथा शूद्रों को सेना में जाने की अनुमति मिल गई। बाद में अंतरजातीय विवाह भी होने लगे। चाणक्य के अनुसार, अंतरजातीय विवाह के बाद जो भी बच्चे जन्म लेते थे, उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। यदि उच्च वर्ग का पुरुष और स्त्री निम्न वर्ग की हो तो बच्चों को पिता की जाति और वर्ण दिया जाता था। धर्मशास्त्र के अनुसार, उच्च वर्ग की स्त्री और निम्न वर्ग के पुरुष की शादी बेहतर नहीं मानी जाती थी। हालाँकि कौटिल्य भी इस बात से सहमत थे। लेकिन वास्तव में ऐसी शादियों में भी जन्म लेनेवाले बच्चे को पिता की जाति मिलती थी। तीनों उच्च वर्ग के पुरुष जब शूद्र की स्त्री से शादी करते थे तो उसकी संतान को 'वर्णसंकर' कहा जाता था।

मेगस्थनीज ने शायद मिस्र की तरह भारत की आबादी को सात वर्गों में बाँटने का उल्लेख किया था। मौर्यकाल में पेशों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया था। पहला वर्ग दार्शनिक था, जो ब्राह्मण पुरोहित और बौद्ध श्रमण थे। साथ ही अल्प संख्या में जैन मुनि इसी श्रेणी में आते थे। उनके चरित्र सामान्य तौर पर ब्राह्मण पुरोहितों के समान होते थे। यज्ञ व धार्मिक अनुष्ठानों के लिए उन्हें बुलाया जाता था। राजा नए साल पर ब्राह्मणों की बड़ी सभा आमंत्रित करते थे। ऐसे मौकों पर राजमहल के मुख्य द्वार पर सभी विद्वान् ब्राह्मण इकट्ठा होते थे। वहाँ वे लिखित रूप में राजा को सलाह देते थे या जन-हित में कृषि उपज और पशुधन की वृद्धि के तरीकों को बढ़ाने की सलाह सार्वजनिक रूप से देते थे। यदि कोई विद्वान् तीन बार गलत जानकारी देता था तो जीवन भर के लिए उसके बोलने पर पाबंदी लगा दी जाती थी और जो सही सलाह देते थे उन्हें कर व अन्य आर्थिक योगदान से मुक्त कर दिया जाता था।

दूसरा वर्ग किसानों या खेतिहरों का था। इस वर्ग में वैश्य वर्ण के लोग ज्यादा जुड़े थे, फिर भी शूद्र, ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के किसानों का भी उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज के अनुसार, समाज के अन्य वर्गों के मुकाबले इस वर्ग की संख्या अधिक थी। किसान सुशील और नम्र स्वभाव के होते थे और उन्हें फसल की कटाई में किसी तरह की समस्या नहीं होती थी। इसके लिए उन्हें सेना कर से मुक्त रखा गया था। वे कभी प्रदर्शन करने या अन्य उद्देश्य से बाजार नहीं जाते थे। ऐसा वर्णन किया गया है कि सिपाही लड़ाई के समय भी उन्हें परेशान नहीं करते थे। डायोडोरस ने कहा है कि किसानों को जमीन के एवज में राजा को कर चुकाना पड़ता था, क्योंकि पूरे भारत की जमीन का मालिक राजा होता था। निजी तौर पर किसी को जमीन का मालिकाना हक नहीं था। भूमि के अतिरिक्त किसानों को कुल उपज का चौथाई हिस्सा राजा के खजाने में भरना पड़ता था।

तीसरा वर्ग था पशुपालकों और शिकारियों का। वे वन्य जनजाति निषाद थे। सिर्फ वे ही शिकार और पशुपालन करते थे। उन्हें जानवरों को खरीदने-बेचने का अधिकार दिया गया था। जंगली जानवरों व पक्षियों से बोई गई जमीन की रक्षा करते थे और बदले में राजा की तरफ से उन्हें अनाज दिया जाता था। वे घुमंतू जीवन जीते थे और तंबुओं में जीवन गुजारते थे।

चौथा वर्ग शिल्पकार और दस्तकारों का था। इस वर्ग में वैश्यों की संख्या अधिक थी। हालाँकि शूद्र शिल्पकारों

की संख्या कम नहीं थी। उनमें से ज्यादातर कृषि में इस्तेमाल होनेवाले औजार और अन्य उपयोगी सामान बनानेवाले थे। हथियार और समुद्री जहाज बनानेवालों को राजा द्वारा भारी मजदूरी दी जाती थी। राजा द्वारा ही उनके लिए रसद का इंतजाम किया जाता था। वे थल सेना के लिए हथियारों को ढोनेवाली गाड़ियाँ और नौसेना के लिए समुद्री जहाज बनाते थे। सैनिकों और प्रजा के लिए परिवहन का इंतजाम करते थे। पाँचवाँ वर्ग लड़ाकुओं का था—यानी जिस वर्ग के ज्यादातर लोग सैनिक होते थे, उसमें ज्यादातर पदाधिकारी क्षत्रिय होते थे। निचले पदों पर शूद्र और वैश्य होते थे। हालाँकि शांति के समय वे लोगों का मनोरंजन करने के लिए करतब दिखाते थे। वे हमेशा सन्नद्ध रहते थे और जैसे ही बुलावा आता था, युद्ध के मैदान में कूद पड़ते थे।

छठा वर्ग सर्वेक्षकों का होता था। इसमें सभी जाति के लोगों की नियुक्ति होती थी। राजा के पास मिलने जानेवालों पर निगरानी रखना और रिपोर्ट तैयार करना उनकी जिम्मेदारी होती थी। इनमें से कुछ को शहर के निरीक्षण की जिम्मेदारी दी जाती थी, जबकि कुछ को सेना में शामिल कर लिया जाता था। उन्हें जरूरत पड़ने पर अपने काम में गणिकाओं (वेश्याओं) की मदद लेने की भी छूट थी।

मेगस्थनीज के अनुसार, सातवें वर्ग में सलाहकार और कर संग्राहक आते थे। राजा से उनका सीधा संबंध होता था। जाति-व्यवस्था के क्रम में ये निचले वर्ग में आते थे, लेकिन उन्हें उनकी विशेष आजादी और न्याय से पहचाना जाता था। उन्हें प्रांतों के राष्ट्रपालों, उपराष्ट्रपालों, खजाना अधीक्षकों, सेना के जनरल और न्यायाधीशों के चयन का अधिकार प्राप्त था। सेना के जनरल क्षत्रिय होते थे। कभी-कभी ब्राह्मण भी सेना के जनरल यानी सेनापति होते थे। मौर्यकाल में मंत्री और न्यायाधीश प्राय: ब्राह्मण होते थे और कई उच्च पदों पर वैश्य के साथ-साथ ब्राह्मण व क्षत्रिय भी होते थे। चाणक्य चंद्रगुप्त के प्रधानमंत्री थे और वे ब्राह्मण भी थे। उनके समय में सौराष्ट्र के राष्ट्रपाल पुष्पगुप्त थे, जो वैश्य थे।

चार आश्रम

सदियों पहले मौर्यकाल में आर्यों के लिए चार आश्रम अथवा स्तर तय किए गए थे। पहला आश्रम था—ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी), जिसके अंतर्गत बच्चे विद्वान् गुरु के पास विद्याध्ययन के लिए जाते थे और कठिन अनुशासन व नियमों का पालन करते थे। मांसाहार और मद्यपान का पूरी तरह निषेध था। 25 वर्ष की उम्र में उनका विवाह किया जाता था और वे दूसरे दर्जे यानी गृहस्थ (घर बसाना) आश्रम में प्रवेश करते थे। जब वे अपने बच्चों की शादी कर लेते थे और दादा-नाना बन जाते थे तो अपनी पत्नी के साथ जंगल चले जाते थे। यानी ऐसे पुरुष उस अवस्था में खुद को सेवानिवृत्त अथवा घर-परिवार के बोझ से मुक्त मान लेते थे। इस अवस्था को वानप्रस्थ (वन-गमन) आश्रम कहा जाता था। ब्राह्मण उस अवस्था में गुरुकुल (स्कूल) खोल लेते थे और बच्चों को पढ़ाते थे। अंतिम अवस्था संन्यासाश्रम में परिव्राजक या संन्यासी हो जाते थे और दुनियादारी से मुक्त होकर भ्रमण पर निकल जाते थे। वे घूम-घूमकर लोगों को धार्मिक उपदेश देते थे। ऐसा सिर्फ ब्राह्मण करते थे।

मेगस्थनीज ने वर्णन किया है कि मौर्यकाल में विद्यार्थियों और गार्हस्थ्य जीवन बितानेवाले ब्राह्मणों का रहन-सहन अलग ढंग का था। यहाँ तक कि गलती करने पर उन्हें कुछ नहीं कहा जाता था। उनकी कही बातों का कुछ अंश—

अध्ययन की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणों को अपने शहर से कुछ दूर छोटे जंगलों में स्थापित गुरुकुलों में जाना होता था। उनका रहन-सहन सामान्य होता था और वे जूट या गधों के चर्म को बिछावन के रूप में इस्तेमाल करते थे। वे मांसाहार और यौनाचार से दूर रहते थे। वे अपना समय उपदेश और भाषण सुनने में व्यतीत करते थे। इस परिस्थिति में विद्यार्थी जीवन बिताने के बाद उन्हें उनकी संपत्ति का आनंद उठाने का अवसर दिया जाता था। वे सुखपूर्वक बाद

का जीवन व्यतीत करते थे। वे सुंदर और मलमल की पोशाक धारण करते थे। वे उँगली और कानों में क्रमश: सोने की अँगूठी और छल्ले धारण करते थे। वे मांसाहार का सेवन करते थे, लेकिन पाले हुए पशु के मांस का भक्षण नहीं करते थे। वे गरम भोजन से परहेज करते थे। ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे पैदा करने के लिए वे कई शादियाँ करते थे। वे पत्नियों को अपने मनोरंजन का साधन मानते थे। उन्हें अपनी सेवा कराने के लिए ज्यादा बच्चों की जरूरत भी होती थी।

हालाँकि अन्य इतिहासकारों और विद्वानों ने मौर्यकाल में ब्राह्मणों की एक से अधिक पत्नी होने और ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे पैदा करने के बारे में कोई जिक्र नहीं किया है, इससे मेगस्थनीज द्वारा उल्लेखित उपर्युक्त बातें त्रुटिपूर्ण हो सकती हैं।

चाणक्य द्वारा रचित 'प्राचीन धर्मशास्त्र' में आठ तरह के विवाह का उल्लेख मिलता है, लेकिन वास्तविक तौर पर छह प्रकार के विवाह होते थे—

- **ब्राह्म विवाह :** हिंदू समाज में ब्राह्म विवाह का प्रचलन था। इसमें सुयोग्य वर के साथ कन्या का विवाह किया जाता था। विवाह के समय कन्या को विभिन्न आभूषणों से सजाया जाता था।
- **दैव विवाह :** इसमें कन्या के माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह किसी ऐसे पात्र से कराते थे, जो यज्ञ आदि अनुष्ठानों में कोई खास जिम्मेदारी निभाता था।
- **आर्ष विवाह :** यह विवाह मौर्यकाल में प्रचलित था। मेगस्थनीज ने उल्लेख किया है कि पुरुष एक जोड़ा बैल देकर कन्या से विवाह करता था।
- **गांधर्व विवाह :** गांधर्व विवाह क्षत्रिय करते थे। पश्चिम में आजकल इस तरह का विवाह प्रचलन में है। इसमें बिना माता-पिता के परामर्श से युवक-युवती अपनी इच्छा से विवाह कर लेते थे।
- **राक्षस और आसुर विवाह :** इन विवाहों को उत्तम नहीं माना जाता था। राक्षस विवाह में युवक जबरन कन्या से शादी कर लेता था; जबकि आसुर विवाह में कन्या को खरीदकर लड़का शादी करता था। हालाँकि क्षत्रियों में राक्षस विवाह का प्रचलन था। वे ऐसा तब करते थे जब किसी कुँवारी लड़की को पकड़ लाते थे या उसे मनाकर भगा लाते थे। यानी माता-पिता या रिश्तेदारों की मरजी के खिलाफ विवाह किया जाता था। इसके अलावा विधवा विवाह को भी मान्यता थी। चाणक्य के अनुसार, वैदिक काल में भी इस विवाह को मान्यता थी। ऐसे विवाह के लिए शर्त होती थी कि विधवा को अपने ससुर और पति (मृत) द्वारा दी गई चीजें छोड़नी पड़ती थीं। यदि विधवा को पुत्र पैदा हुए हों तो उसके पुत्र द्वारा दी गई संपत्ति (श्रीधन) को लौटाना पड़ता था।

चाणक्य ने 'अर्थशास्त्र' में एक स्थान पर विवाह-विच्छेद का जिक्र किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है—यदि कोई महिला अपने पति से नफरत करती थी तो वह अपनी इच्छा से तलाक नहीं ले सकती थी और न पति ही अपनी मरजी से तलाक ले सकता था। परंतु दोनों के समझौते से विवाह-विच्छेद संभव था। मौर्यकाल में विवाह-विच्छेद के मामले विरल ही देखने को मिलते थे। इस तरह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मौर्यकाल में महिलाओं की स्थिति बेहतर थी और समाज में उनका सम्मान था। हालाँकि पति की मृत्यु के बाद संपत्ति का बँटवारा संतानों में कर दिया जाता था और माता का भरण-पोषण करने की जिम्मेदारी नहीं होती थी, लेकिन महिला की अपनी संपत्ति होती थी, जिसे श्रीधन कहा जाता था। चाणक्य के अनुसार, महिलाओं के पास जो आभूषण होते थे वे उनकी निजी संपत्ति कहलाते थे। उनका मूल्य 2,000 पण से कम नहीं होता था। हालाँकि महिलाओं के पास आभूषण रखने की कोई सीमा नहीं थी। पति की मृत्यु के बाद विधवा को धार्मिक जीवन अपनाना होता था। जमा निधि और आभूषण पर तो विधवा का अधिकार था, परंतु उसके एवज में कर चुकाने की जिम्मेदारी भी उसी की होती थी।

मेगस्थनीज के अनुसार, मौर्यकाल में प्रजा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करती थी। कोई किसी का दास नहीं था। चाणक्य के अनुसार, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए लोग खुद को बंधक रख देते थे। इसे दास बनाना भी नहीं कहा जा सकता था। बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं—यदि किन्हीं आवश्यक कारणों से किसी को दास बनाना भी पड़ता था तो धन देकर जल्द ही मुक्त कर देना पड़ता था। किसी पारिवारिक समस्या, जुरमाना या अदालत के फैसले पर जब्त घरेलू सामान को छुड़ाने के लिए पैसे की जरूरत होती थी तो ऐसी परिस्थितियों में आर्य खुद को बंधक रखते थे। हालाँकि उसका युवा और काम करने में सक्षम होना जरूरी था। पश्चिमी देशों में दासों का व्यक्तिगत अधिकार नहीं था, लेकिन भारत में कथित दास की नौकर से थोड़ी बुरी स्थिति होती थी। समय पूरा होने पर उन्हें मुक्त कर दिया जाता था। यदि कोई अपने मालिक के काम से फुरसत पाकर कहीं और काम करता और इस तरह इतना पैसा जमा कर लेता जितने पर उसे खरीदा गया था तो वह मुक्त हो सकता था। इतना ही नहीं, यदि कोई अपने दास से गाली-गलौज करता या फिर नीचा काम करने का दबाव बनाया जाता था तो वह खुद-ब-खुद स्वतंत्र हो जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में पश्चिमी देशों की तरह दास-प्रथा नहीं थी।

वस्त्र-परिधान

मौर्यकाल में भारत की प्रजा सूती वस्त्र पहनती थी। ये वस्त्र यूनानियों को काफी आकर्षित करते थे; चूँकि उनके लिए ये नए थे। इसलिए वे कहा करते थे, भारतीय ऐसे ऊनी कपड़े पहनते थे, जिन्हें पेड़ों से प्राप्त किया जाता था। नियार्कस ने उल्लेखित किया है कि भारतीय कमर से नीचे एड़ी तक सूती वस्त्र पहनते थे। शरीर के ऊपरी हिस्से में कंधे तक वस्त्र होता था। कंधे को आंशिक रूप से ढका जाता था, जिसे चादर की तरह लपेटकर ओढ़ा जाता था। कपड़े को ऐंठकर उसे सिर के चारों तरफ बाँधा जाता था। कुछ भारतीय कान में कुंडल पहनते थे। ऐसा वही करते थे, जो अमीर होते थे। नियार्कस का कहना था कि वे बड़ी दाढ़ियाँ रखते थे और पसंद के अनुसार विभिन्न रंगों से उन्हें रँगते थे। वे सफेद चमड़े से निर्मित जूते पहनते थे। जूते पहनकर लंबे दिखें, इसके लिए उसके तलवे पर चमड़ा जोड़कर मोटा बना लेते थे। कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है कि मौर्यकाल में भारतीय दिखावटी वेशभूषा धारण करते थे और आभूषण पहनते थे। उनके लबादे स्वर्णजड़ित होते थे। उनके आभूषणों में कीमती पत्थर जड़े होते थे। उनके वस्त्र मखमल के कपड़े के बने होते थे। उनके सहयोगी छतरी लेकर उनके पीछे-पीछे चलते थे, जिससे उनके सम्मान में चार चाँद लग जाते थे। इससे वे देखने में आकर्षक भी लगते थे। वे फिजूल खर्च नहीं होते थे और समाज में उनका अच्छा आचरण रहता था। वे अनुशासनहीनता को बरदाश्त नहीं करते थे। उनकी पहचान नैतिकता, सच्चाई और ईमानदारी से होती थी। उन्हें कभी-कभार ही कानून की शरण में जाना होता था। वे बिना किसी आशंका के अपने घरों को छोड़कर कहीं भी चले जाते थे। परिजन की मौत हो जाने पर उनकी याद में स्मारक खड़ा नहीं करते थे; लेकिन उनके द्वारा जीवनपर्यंत किए गए नैतिक पर चर्चा करते थे। उनकी स्मृति में मृत्यु के बाद यशगान करते थे और उनकी स्मृतियों को सुरक्षित रखते थे।

हालाँकि उनके खान-पान के अंदाज के बारे में विशेष प्रमाण नहीं मिलता है लेकिन माना जाता है कि वे बड़े आदर्श अंदाज में भोजन करते थे। वे प्राय: अकेले ही भोजन करते थे और भोजन करने का कोई निर्धारित समय नहीं होता था। सहूलियत के हिसाब से वे भोजन करते थे। उनका सामाजिक जीवन उच्च स्तरीय था। अशोक के शिलालेख और चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' से पता चलता है कि भारतीयों की कुछ कमजोरियाँ भी थीं। सम्राट् अशोक के नौवें स्तंभ की इबारत के अनुसार, लोग विभिन्न मंगल संस्कारों का आयोजन करते थे। खासकर जब महिलाएँ बीमार होती थीं, शादी, बच्चों के जन्म पर और यात्रा पर निकलने के दौरान शुभ संस्कार किए जाते थे। समाज में उच्च वर्ग के लोग जुआ खेलते थे। इस वर्ग के लोग मद्यपान भी करते थे। मेगस्थनीज के अनुसार, मौर्यकाल में लोग यज्ञ के

समय को छोड़कर मदिरा (सोमरस) का पान नहीं करते थे। शायद यह ब्राह्मणों के लिए कहा गया हो।

आर्थिक स्थिति

मौर्यकाल में आर्थिक संपन्नता थी, लेकिन समुद्र और नदियों के किनारे घर बनाकर रहनेवालों को हर साल परेशानी झेलनी पड़ती थी। लकड़ी की उपलब्धता होने की वजह से वे लकड़ी और ईंटों से घर बनाते थे। बाढ़ की हालत में उनके घर नष्ट हो जाते थे। हालाँकि इस दृष्टिकोण से शहरों में रहनेवालों का जीवन सहज था।

चाणक्य ने भारत की आर्थिक स्थिति की रोचक जानकारियाँ सहेजकर रखी थीं। सामान के बदले सामान देने की जगह सिक्के का प्रचलन शुरू हो गया था। मौर्यकाल से पहले आम लोगों के लिए चिह्नित सिक्के का प्रचलन था। चाणक्य ने वर्णन किया है कि चंद्रगुप्त मौर्य नियमित सिक्का प्रचलन में लाए। मानक सिक्का चाँदी का पण लगभग 146 ग्रेन का होता था। इसके अतिरिक्त पण के आधे, चौथाई और आठवें हिस्से के भी सिक्के होते थे। ताँबे के सिक्के को मारक कहा जाता था और सोने के सिक्के को सुवर्ण कहा जाता था। लेकिन सुवर्ण का प्रचलन काफी कम था।

प्राचीन काल से ही भारत में कृषि उद्योग का विशेष महत्त्व रहा है। मौर्यकाल में भी कृषि को विशेष महत्त्व दिया जाता था। चाणक्य ने मौर्यकाल में धान, जौ, गेहूँ, तीसी, सरसों, दलहन, गन्ना, कपास आदि की खेती होने का जिक्र किया है। मेगस्थनीज ने भी पुष्टि की है कि मौर्यकाल में इन अनाजों के अतिरिक्त पूरे भारत में बाजरे की पर्याप्त मात्रा में खेती की जाती थी। उसकी सिंचाई नदियों से की जाती थी। विभिन्न प्रजाति के दलहन और धान उगाए जाते थे, जिसे 'बॉस्पोरम' कहा जाता था। मिट्टी की गुणवत्ता अच्छी न होने के बावजूद उत्तम किस्म के अनाज पैदा होते थे। हालाँकि भारत में अकाल कभी नहीं पड़ा था, इस वजह से अनाजों में पौष्टिकता की कभीकमी नहीं पाई गई। उन दिनों भारत में वर्ष में दो बार बारिश का मौसम आता था। एक वर्षा के दिनों में और दूसरी बार गरमी के संक्रमण काल में। इस मौसम को धान की बुआई के लिए बेहतर माना जाता था। इसके साथ ही उस मौसम में बाजरे की भी खेती होती थी। मैदानी भूभाग होने की वजह से मिट्टी में नमी बनी रहती थी।

दूसरी तरफ नदियाँ तथा बरसाती पानी सिंचाई का साधन था। इस तरह से कृषि उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में अनाज की कमी नहीं थी। अकाल होने पर भी उन दिनों अनाज की पूर्ति हो जाती थी। हालाँकि उसके बावजूद कभी-कभी अकाल की नौबत आ ही जाती थी। जैन प्रमाणों के अनुसार, चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भारत में एक बार भीषण अकाल पड़ा था। उन दिनों दूसरे देशों से मदद लेनी पड़ी थी। उनमें से कुछ के बारे में चाणक्य ने भी वर्णन किया था। ऐसे समय में रोजगार देने के रूप में पुराने महलों की मरम्मत कराई जाती थी। मित्र राज्यों को मदद के लिए कहा जाता था। देश के संपन्न लोगों से हाथ बँटाने की अपील की जाती थी। जिस क्षेत्र में अकाल होता था, वहाँ के लोगों को अन्यत्र भेज दिया जाता था।

कपड़ा उद्योग

कृषि के बाद कपड़ा उद्योग महत्त्वपूर्ण संसाधन था। मेगस्थनीज ने इस बात की पुष्टि की है कि भारतीयों का लबादा यानी शरीर के ऊपरी हिस्सों में पहना जानेवाला वस्त्र उच्च गुणवत्ता का होता था। चाणक्य ने भी कपड़ा बुनाई के उद्योग का जिक्र किया है। यह गृह उद्योग से जुड़ा था और महिलाएँ भी सूत कातती थीं। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार, बनारस, बंगाल, कलिंग और मदुरई का सूती वस्त्र सर्वोत्तम माना जाता था। इसी प्रकार रेशम, पटुआ और ऊनी सामान बनाए जाते थे। उन दिनों भी नेपाल का कंबल प्रसिद्ध था।

खनन उद्योग

खनन उद्योग भी उन दिनों प्रगति पर था। बहुमूल्य पत्थर और धातुएँ खदानों से निकाले जाते थे। धातुओं में

मुख्यतया सोना (सुवर्ण), चाँदी (रूपा), लोहा (कालायस), ताँबा (ताम्र), काँसा (कांस्य), राँगा (शीशा), टिन (त्रपु) और पीतल (आर्कुट) प्राप्त होते थे।

मेगस्थनीज ने यहाँ की जमीन की विशेषताएँ बताते हुए कहा है—''जिस मिट्टी में सभी तरह के फल अच्छी पैदावार देते थे यानी उर्वर होते थे, वह खनिज संपदा के दृष्टिकोण से बेहतर मानी जाती थी। ऐसी मिट्टी में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा जैसी धातुएँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती थीं। साथ ही भारत सोने के मामले में सबसे धनी था। भारत में बहुमूल्य पत्थरों और रत्नों की भी कमी नहीं थी। चाणक्य ने विभिन्न रंगों और प्रकारों के हीरों का उल्लेख किया है। उनमें हीरा (वाजरा), माणिक्य (पद्मराग), फिरोजा (वैदूर्य), नीलम (इंद्रनील) और स्फटिक शामिल हैं।''

मौर्यकाल में धातुओं को गलाने का काम अच्छी तरह प्रचलन में था। उन दिनों लोहार और इस तरह की धातुओं का काम करनेवाले सैनिकों के लिए हथियार और कृषि उपयोग व घरेलू उपयोग में आनेवाली विभिन्न प्रकार की सामग्रियाँ बनाते थे। सोनार चाँदी और सोने को गलाकर तरह-तरह के आभूषण बनाते थे। बढ़ई घरेलू उपयोग और सजावट का सामान बनाते थे। बढ़ई ही नाव, बैलगाड़ी, रथ व लकड़ी का अन्य सामान भी बनाते थे। बिहार में पटना के समीप मौर्यकाल में बने लकड़ी के प्लेटफॉर्म्स पाए गए हैं।

मौर्यकाल के शिल्पकार भारत की प्राचीन कलाओं में निपुण थे। जातक कथाओं में हाथी के दाँतों की कला के बारे में जानकारियाँ मिलती हैं। मौर्यकाल में अमीर लोग हाथी के दाँतों से बने आभूषण धारण करते थे। खासकर वे हाथी के दाँतों से निर्मित कुंडल पहनते थे।

चमड़ा उद्योग

मौर्यकाल में चमड़ा उद्योग भी काफी महत्त्वपूर्ण था। देश के विभिन्न भागों में इसका काम होता था और लोग चमड़े से बना सामान पसंद भी करते थे। चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में चमड़े और इसके रंग के लिए कुछ खास स्थानों का उल्लेख किया है। उन दिनों दक्ष कलाकारों के हाथों के बने चमड़े के जूते अमीरों की शान में चार चाँद लगा देते थे।

शंख से बनी वस्तुएँ

दक्षिण भारत में शंख, हीरा, मोती और स्वर्ण के सामान प्रचलित थे। यह व्यापार सिर्फ देश भर में ही प्रचलित नहीं था बल्कि बाहर भी उन चीजों की जबरदस्त माँग थी। दूसरे देशों से व्यापारिक गतिविधियाँ जारी थीं। यहाँ तक कि मौर्यकाल से पहले भी बेबिलोन और अन्य देशों से व्यापारिक संबंध थे। मौर्यकाल में उन संबंधों में ज्यादा तेजी आई थी। विदेशियों के साथ व्यापार के लिए विशेष परिषद् का गठन किया गया था। व्यापार विस्तार की चंद्रगुप्त की नीति काफी सफल रही और उसके साथ ही पश्चिम एशिया एवं मिस्र आदि देशों में व्यापार का विस्तार हुआ। भारत से मोर, हाथी के दाँतों से बनी वस्तुओं, मोती, रंजक, रंग और विभिन्न उपयोगी वस्तुओं का निर्यात होता था। चीन से चीनी रेशम आयात किया जाता था। यह व्यापार सड़क और जलमार्ग से किया जाता था। बौद्ध संस्मरणों में 'बावेरू जातक' से जानकारी मिलती है कि समुद्री मार्ग से बेबिलोन से व्यापार होता था। चाणक्य ने विभिन्न समुद्री यात्राओं का उल्लेख किया है। 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित है कि समुद्र पार से लेकर पास के बंदरगाहों के माध्यम से व्यापार होता था।

मौर्यकाल में आर्थिक जीवन में सहकारी क्रियाकलापों का योगदान था। समान जाति व श्रेणी के न होने के बावजूद वे समान व्यवसाय से जुड़ जाते थे। यूरोपीय देशों की सहकारी समितियों की तरह यहाँ भी व्यवस्थाएँ प्रचलन में थीं। श्रेणी की पहचान सरकार द्वारा की जाती थी और उन्हें कई अधिकार दिए जाते थे। श्रेणी के प्रधान को 'श्रेष्ठिन' कहा जाता था। सहकारी समित्रों के दूसरे संगठन को 'स्वयंभू समुत्थान' कहा जाता था। यह व्यवस्था वर्तमान

संयुक्त कंपनी के समान थी। इस प्रकार के व्यावसायिक संगठन में कई सदस्य जुड़े होते थे। पूँजी में उनका समान हिस्सा होता था और लाभ का बँटवारा भी उसी औसत में किया जाता था।

सड़कों का महत्त्व

व्यापार की समृद्धि उस समय की सड़कों पर निर्भर थी। मौर्य साम्राज्य में शासक भवन निर्माण और सड़कों के रख-रखाव को विशेष महत्त्व देते थे। दूसरे प्रांतों के शासक भी एक-दूसरे प्रांत को जोड़ने के लिए सड़क का जाल फैलाए रखते थे। राजकीय पथ उत्तर-पश्चिम में पुष्कलावती से वाया तक्षशिला, पाटलिपुत्र तक जाता था। आगे गंगा के मुहाने से आधुनिक ग्रांड ट्रंक रोड से जुड़ी थी। हाथी, घोड़े, गधे और ऊँट आवागमन के बेहतर साधन थे। हाथी की सवारी सिर्फ राजपरिवार से जुड़े लोग करते थे। इसके बाद रथ से सवारी की जाती थी और ऊँट की सवारी की गिनती भी बेहतर साधनों में होती थी।

❑

मौर्यकाल में साहित्य और कला

मौर्यकाल के प्रारंभ में संपूर्ण उत्तरी भारत में आर्यन भाषा बोली जाती थी। शायद यही वजह है कि भारत का नाम 'आर्यावर्त' पड़ा। यह सामान्य बोलचाल की भाषा थी। जानकारों का अनुमान है कि आर्यन बोली ही समय के साथ क्रमश: संस्कृत और प्राकृत में रूपांतरित हो गई थी। संस्कृत में भी बहुत बदलाव हुआ। पहले की संस्कृत ऋग्वेद में पाई जाती है। यह लिखित रूप की भाषा थी, जबकि बोली जानेवाली संस्कृत का स्वरूप पाणिनि द्वारा रचित था। अशोक के शिलालेख से प्रमाण मिलता है कि मौर्यकाल में जन-सामान्य में बोली जानेवाली भाषा प्राकृत थी। इसे तीन स्वरूपों में बाँटा गया था। उसमें पहले प्रकार की भाषा प्राक्य अथवा पूर्वी प्राकृत थी। यह भाषा पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे कोसल, काशी, विदेह, अंग, मगध आदि में प्रचलित थी। दूसरे प्रकार की प्राकृत भाषा मध्य देश में यानी हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान जो पहले कुरु, पंचाल, शूरसेन और मत्स्य में बोली जाती थी। तीसरे प्रकार की प्राकृत भाषा उत्तर-पश्चिमी राज्यों में और पाँच नदियों की भूमि गंधार, केकय और मद्र में बोली जाती थी। वह भी मध्य देश की प्राकृत भाषा से आती थी और उसे पालि कहा जाता था। यह भाषा बौद्ध उक्तियों को बोलने में इस्तेमाल की जाने लगी और लिखित स्वरूप में उस भाषा का नाम 'ब्राह्मी' पड़ गया।

मौर्यकाल में जो कुछ लिखा गया उसके लिए संस्कृत या पूर्वी प्राकृत या पालि तीनों भाषाओं का इस्तेमाल किया गया। प्राचीन भारत के इतिहास में जो सबसे बड़ी कमी है वह है तिथियों की प्रामाणिकता की। उन दिनों के लिखित विवरण का ज्यादा प्रमाण नहीं मिलता है। उस काल के सबसे महत्त्वपूर्ण और विश्वसनीय लेखक विष्णुगुप्त यानी चाणक्य थे। उन्हें कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है। कौटिल्य उनका गोत्र और वंश का नाम है। उस जमाने में कौटिल्य से भृगु वंश के ब्राह्मण से संबंधित वत्स या वात्स्यायन कुल का बोध होता था।

चाणक्य का जन्म एक गरीब ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने तक्षशिला विश्वविद्यालय से पारंपरिक शिक्षा ग्रहण की थी। वहाँ से शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे वहीं के अध्यापक हो गए थे। कालांतर में अपनी कूटनीति और क्षमता तथा गुणों की वजह से चंद्रगुप्त के पथ-प्रदर्शक बन गए। वे विद्वान् होने के साथ-साथ महान् लेखक भी थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निस्संदेह वे अपने समय के महान्: व्यक्तित्व थे।

चाणक्य द्वारा रचित सबसे प्रख्यात गं:रथ 'अर्थशास्त्र' था। इस पुस्तक में उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक और शासन की कला का विस्तृत चित्रण किया है। यह ग्रंथ काव्य रूप में है और इसे 15 अधिकरणों यानी खंडों में बाँटा गया है। प्रत्येक खंड में कई अध्याय हैं। इसमें राजाओं के कर्तव्य, नागरिक प्रशासन, कानून एवं न्याय, विदेशी संबंध, युद्ध कौशल और शत्रु से लोहा लेने की गुप्त विधियाँ आदि उल्लेखित हैं। इसके साथ 'अर्थशास्त्र' में न्याय के अच्छे-बुरे दोनों पक्षों का जिक्र है। मौर्य साम्राज्य के उद्भव के समय भारत अव्यवस्थित था और हर तरफ अशांति थी। प्रजा शांत व व्यवस्थित जीवन जीने को आतुर थी। प्रजा सम्मानपूर्वक जीवन जीना चाहती थी। कुछ प्रख्यात विद्वानों ने दासता और शूद्रों की स्थिति के बारे में चाणक्य की सोच का जिक्र किया है। इसमें कहा गया है कि इनके प्रति चाणक्य का नजरिया सम्मानजनक और सहज था। इसके विपरीत अरस्तू ने समाज में उनकी स्थिति को सम्मानजनक नहीं बताया था। उन्होंने आर्यों को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया था—शूद्र आर्यों के समकक्षीय थे और उनकी गिनती उच्च जातियों में होती थी। उनके अनुसार, चाणक्य भी आर्य थे और उनका उद्देश्य आर्यावर्त को शक्ति-संपन्न बनाना था। उनकी दृष्टि में वे सामाजिक रूप से उदार और प्रशंसनीय थे। किंवदंती है कि चाणक्य हर क्षेत्र में गहरी जानकारी रखते थे। उन्होंने नीति पर आधारित तथ्यों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने औषधियों और चिकित्सा-शास्त्र के बारे में भी लिखा है।

मौर्यकाल में संस्कृत में व्यापक काम हुए। हालाँकि समय के बारे में लिखित प्रमाण नहीं मिलता है। फिर भी, दो प्रमुख ग्रंथों के बारे में प्रमाण मिलता है, जिनकी रचना मौर्यकाल में हुई थी। उनमें से एक वात्स्यायन रचित 'कामसूत्र' है और दूसरी रचना भरत रचित 'नाट्यशास्त्र' है। दोनों ही ग्रंथ मौर्यकाल में लिखे गए थे। उस काल में जैन मुनि भद्रबाहु प्राकृत के महान्: लेखक हुए। भद्रबाहु ने स्थविरावली में महावीर के बाद छठे स्थविर का जिक्र किया है। वे यशोभद्र के शिष्य थे। उन्होंने चंद्रगुप्त के समय में अपनी रचना की थी। हालाँकि हेमचंद्र का मानना था कि चंद्रगुप्त के शासनकाल के सोलहवें वर्ष में भद्रबाहु की मृत्यु हुई थी। भद्रबाहु जैन प्राकृत साहित्य के जाने-माने लेखक थे। उनके ग्रंथों में 'कल्पसूत्र' प्रमुख है। पुस्तक तीन हिस्सों में है—जिन कारित्र (जिनों की जिंदगी), स्थविरावली (स्थविरों की सूची) और सभाकारी (यतियों के नियम)। हालाँकि इसमें संदेह है कि सभी खंडों को भद्रबाहु ने लिखा था।

मौर्यकाल में सबसे महत्त्वपूर्ण काम जो पालि भाषा में हुआ, वह बौद्ध 'कथावत्थु' था, जिसके बारे में मुद्गलि-पुत्र तिक्ष्य ने वर्णन किया था।

विद्या अध्ययन केंद्र

मौर्य और पूर्व-मौर्यकाल में विद्या अध्ययन के कई केंद्र थे। उनमें से तक्षशिला सबसे प्रख्यात विद्या अध्ययन केंद्र था। विदेशों से और भारत के राजपुत्रों सहित दूर-दराज से सामान्य और ब्राह्मण विद्यार्थी यहाँ विद्यार्जन के लिए आते थे। विद्या अध्ययन के अन्य केंद्रों में वाराणसी अथवा बनारस था। प्राचीन काल से लेकर आज तक यहाँ विशेष गुणवत्ता के साथ पठन-पाठन का कार्य होता है। विद्या अध्ययन का तीसरा महत्त्वपूर्ण केंद्र उज्जैन था। उज्जैन पश्चिमी भारत में था। मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र राजनीतिक और व्यावसायिक दृष्टिकोण से संपन्न होने के साथ विद्या अध्ययन का बड़ा केंद्र भी थी।

शिक्षा केंद्रों के अलावा कला और अन्य क्षेत्रों में विशेष पहचान थी। मेगस्थनीज ने स्पष्ट रूप से कहा है —''मौर्यकाल में भारतीय कला के क्षेत्र में दक्ष थे और वे प्रकृति के सान्निध्य में रहना पसंद करते थे। उन्हें साँस लेने के लिए शुद्ध हवा और पीने के लिए स्वच्छ पानी चाहिए था।'' इसके अलावा वे कला के पुजारी थे। कला के साथ-साथ संगीत, नृत्य, नाटक सहित अन्य विधाओं में वे निपुण थे। संगीत भारत में प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक काल से ही संगीत का प्रचलन था और चार वेदों में से सामवेद में विभिन्न प्रार्थनाओं का संग्रह है, जिन्हें गाया जाता था। मौर्यकाल में उच्च स्तरीय कला विकसित थी। चाणक्य ने उल्लेखित किया है कि राजमहल में कभी गायक और वादकों का कार्यक्रम राजा के समक्ष रखा जाता था। इसमें वाद्ययंत्र वडाका का इस्तेमाल किया जाता था। खासकर राजा के समक्ष जिस वाद्ययंत्र को बजाया जाता था, उसका नाम अटोद्य था। जब राजा राजमहल में होते थे तब संगीतकार उनका मनोरंजन करते थे। उस समय के पारंपरिक वाद्ययंत्रों में वीणा, वेनु (बाँसुरी) और मृदंग थे।

चाणक्य ने नर्तक का जिक्र किया है, जो नृत्य करते थे। उन दिनों ऐतिहासिक कला का भी बोलबाला था। पाणिनि ने शिलालीन और कर्षव के नाट्यसूत्र का जिक्र किया है। चाणक्य और पतंजलि ने मौर्यकाल में कला के विकास का पर्याप्त जिक्र किया है। चाणक्य ने न सिर्फ नटों (अभिनेताओं) अपितु प्रेक्षाओं का भी उल्लेख किया है। पतंजलि, जो मौर्यकाल के अंतिम दौर में आए, उन्होंने अपने नाटक में कंस-वध और बालि-वध का जिक्र किया है। इसके अलावा रास का भी उल्लेख है। इस प्रकार चाणक्य और पतंजलि के साहित्य से स्पष्ट होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में ऐतिहासिक कला का विकास हुआ था।

मौर्यकाल में चित्रकारी पर भी विशेष महत्त्व दिया जाता था। जब उस जमाने की कला की बात चलती है तो

चित्रकारी की विशेष चर्चा होती है। बौद्ध साहित्य से हमें पता चलता है कि उस जमाने की भित्ति कला प्रख्यात थी। इतिहासकार रायस डेविड ने बौद्ध चित्रकारी के संदर्भ में कहा है—''वे घरों पर चित्रकारी करनेवाले थे। घरों में इस्तेमाल की जानेवाली लकड़ी पर चूना आदि की परत चढ़ाकर उस पर चित्रकारी की जाती थी। वे भित्ति चित्रकारी भी करते थे।'' इससे स्पष्ट होता है कि मगध तथा कोसल राज के समय में भित्ति चित्र का प्रचलन था। सातवीं तथा आठवीं शताब्दी में अजंता की गुफाओं में की गई चित्रकारी भित्ति चित्र का ही स्वरूप है। माना जाता है कि श्रीलंका की पाँचवीं सदी की सिगरिया रॉक इसी से मिलती-जुलती है।

मौर्यकाल में मूर्तिकला चरम पर थी, खासकर सम्राट् अशोक के शासनकाल में इस पर काफी काम हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में पत्थरों की कटाई और घिसाई का काम काफी बारीकी से होता था। राजमहलों के स्तंभों पर सोने की लताएँ, चाँदी के पक्षी और रत्नजड़ित सिंहासन व कुरसियाँ बनाई जाती थीं। हालाँकि वर्तमान समय में प्राचीन काल के जो मूर्ति शिल्प मिल रहे हैं, उन्हें निस्संदेह रूप से चंद्रगुप्त के समय का नहीं कहा जा सकता। पटना के निकट यक्ष की दो मूर्तियाँ मिली हैं, जो फिलहाल कोलकाता के म्यूजियम में हैं। यक्ष की एक मूर्ति परखम से मिली थी, जो इन दिनों मथुरा म्यूजियम में है। यक्षिणी की एक मूर्ति दीदारगंज और विशालकाय यक्ष की मूर्ति बिसनगर से मिली थी। इसे मौर्यकाल से पहले का माना जाता है, क्योंकि इसकी घिसाई से मौर्यकाल की शिल्पकारी की प्रतीति होती है। बासरबखिरा का स्तंभ कलाकृति के दृष्टिकोण से अशोक के स्तंभ से मेल खाता है, लेकिन इसे चंद्रगुप्त के शासनकाल में निर्मित किया गया था।

मौर्यकाल में वास्तुकला कलाओं की कामिनी कही जाती थी। सर्वेक्षण में यह बात सामने आई कि मौर्यकाल में इस कला का काफी विस्तार हुआ। मौर्यकाल से पूर्व ही इस कला का विकास हुआ था और जातक कथा में एक अमीर आदमी की सात मंजिला इमारत (सत्तभूमाका प्रासाद) में इसका उल्लेख है। मौर्यकाल में इस कला को और भी गुणवत्ता के साथ विकसित किया गया था। मेगस्थनीज के पाटलिपुत्र के बारे में विवरण से इसका प्रमाण मिलता है। 570 किलो और 64 दरवाजोंवाले एक बड़े शहर का जिक्र है, जिसके सुंदर उद्यान में रंग-बिरंगे फूल लगे हैं। इसे फूलों की नगरी कुसुमपुरा के नाम से जाना गया। यह राजमहल चंद्रगुप्त मौर्य का था।
पत्थर के पिलर काफी मजबूती से लगाए जाते थे। गुप्त काल में पिलर के लगभग 9 फीट हिस्से को जमीन में गाड़ा जाता था, ताकि मजबूती बनी रहे। कमरों आदि के निर्माण में लकड़ियों का इस्तेमाल किया गया था। उसमें धातु के नट-बोल्ट का इस्तेमाल किया गया था।

पर्शिया, यूनान और भारत में संबंध

ईसा पूर्व छठी और चौथी शताब्दी के बीच पर्शिया, यूनान और भारत में आर्यों की तीन बड़ी शाखाओं के साम्राज्य थे। इनमें से प्रथम पर्शियाई शासक दारियस प्रथम हुआ। दूसरा यूनान का शासक सिकंदर और तीसरा भारत का शासक हुआ चंद्रगुप्त मौर्य। तीनों देशों के विकास में एक-दूसरे के प्रति गहरे संबंध और बेहतर योगदान का महत्त्व रहा था। इन साम्राज्यों के बीच बेहतर संबंध का दौर वर्षों चलता रहा। तीनों शासकों में से एकिमेडिया के शासक दारियस सबसे पहले अस्तित्व में आए। इसके बाद यूनान और भारत के शासक अस्तित्व में आए। ये दोनों पर्शिया के राजनीतिक प्रभाव से प्रभावित थे। यूनान और भारत में अधीनस्थ शासक की जो व्यवस्था लाई गई वह पर्शिया की ही देन थी। यूनान में शासक के लिए सत्रप और संस्कृत में 'क्षत्रप' शब्द का इस्तेमाल किया गया, वह पर्शियाई मूल शब्द 'क्षत्र-पावा' से आया है। हालाँकि समय के साथ-साथ पर्शिया में भी भारत की कुछ चीजों को अपनाया गया, जो उन्हें अच्छा लगा। उदाहरण के लिए, एक प्रकार के खेल के लिए भारत में संस्कृत में इस्तेमाल होनेवाला शब्द 'चतुरंग' पर्शिया में 'शतरंज' के नाम से विख्यात हुआ।

भारत और यूनान के बीच छठी शताब्दी की शुरुआत में संबंध स्थापित हुए। तक्षशिला विश्वविद्यालय विद्या अर्जन का एक बड़ा केंद्र था, जहाँ विदेशी छात्र भी अध्ययन करते थे। इस दौरान विदेशी और भारतीय विद्यार्थियों को एक-दूसरे के संसर्ग में आने का अवसर मिलता था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में पर्शियाई और यूनानी भाषाएँ वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती थीं। संस्कृत के महान्: वैयाकरण पाणिनि यूनानी साहित्य के संपर्क में आए थे और उन्होंने यवनानि (यवन के बारे में) पर रचना की थी। भारतीय दर्शन और गणित पश्चिमी देशों में पहुँच गया और यूनानी विद्वानों ने इसे स्वीकार कर लिया था। यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस ने भारतीय दर्शन और विज्ञान पर अपनी शिक्षा का गहरा असर छोड़ा था। ई.पू. छठी शताब्दी में भारत में धार्मिक, दार्शनिक, गणितीय व अन्य शिक्षा पर जोर दिया जाता था। उन्हीं दिनों संचयी बल के सिद्धांत को स्वीकार किया गया था।

दूसरी तरफ भारत के कुछ धार्मिक सिद्धांतों ने यूनानियों को आकर्षित किया। वैदिक धर्म भागवत की सहजता और आदर्श ने यूनानियों को आकर्षित किया। यही वजह है कि हेलिओडोरस के शिलालेख में भागवत के अंश को देखा जा सकता है। उसके बाद भारत का जो महान्: धर्म था, जिसे काफी संख्या में विदेशियों ने अपनाया, वह था बौद्ध धर्म। बड़ी संख्या में यूनानी धर्म-परिवर्तन कर बौद्ध धर्म के अनुयायी बन गए।

❑

चंद्रगुप्त मौर्य की राज्य-नीति

प्राचीन ऐतिहासिक धरोहरों को समेटे पूर्वी चंपारण में कई स्थल मौजूद हैं, जिनकी चर्चा वेद से लेकर पुराणों में मिलती है। इसी कड़ी में शामिल है चकिया प्रखंड का पिपरा, जो मौर्यकाल के पूर्व 'पिपल्ली कानन' के रूप में जाना जाता है। पीपल के वनों के कारण इसका नाम पिपल्ली कानन पड़ा था। इसी जगह पर भगवान् श्रीराम के काल की वेदी थी, जिसके चलते इसे वेदीवन-मधुबन कहा गया। इसी पिपल्लीकानन स्थित वेदीवन में मौर्य वंश के महान् सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म हुआ था और उनकी माँ मूरा इसी जगह की थीं। महापंडित चाणक्य ने इसी स्थल पर चंद्रगुप्त को खेलते पाया था और उसमें राजसी गुण देख उसे मगध का सम्राट् बनाया था। बाद में पाटलिपुत्र में इसकी राजधानी बनाई गई। इसकी चर्चा कई ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलती है।

इस स्थल के बारे में इतिहास व स्थानीय प्रामाणिकता की जाँच के बाद पाया गया कि यही चंद्रगुप्त की जन्मस्थली थी। इतिहास की प्राध्यापक चित्रलेखा श्रीवास्तव कहती हैं कि चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म पिपल्ली कानन में उल्लखित है और वह जगह आज का पिपरा ही है। वेदीवन के पास एक प्राचीन किले के ध्वंसावशेष भी मिलते हैं। वहीं 4 किलोमीटर की परिधि में चार सिंह द्वार के अवशेष होने की पुष्टि हो चुकी है। बताया जाता है कि बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के दौरान यहाँ सिंह द्वार बनाया गया होगा। स्थानीय नागरिक एवं इतिहास के शिक्षक लक्ष्मणदेव सिंह कहते हैं कि जिले के प्राचीन स्थलों में वेदीवन की महत्ता इसलिए ज्यादा है कि यह चंद्रगुप्त मौर्य की जन्मस्थली है।

चंद्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबंध बड़ा व्यवस्थित था। इसका परिचय यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के विवरण और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से मिलता है। लगभग 300 ईसा पूर्व में चंद्रगुप्त ने अपने पुत्र बिंदुसार को गद्दी सौंप दी। मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त को नंद वंश के उन्मूलन तथा पंजाब-सिंध में विदेशी शासन का अंत करने का ही श्रेय नहीं है वरन् उसने भारत के अधिकांश भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। प्लूटार्क ने लिखा है कि चंद्रगुप्त ने 6 लाख सेना लेकर समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। जस्टिन के अनुसार, सारा भारत उसके अधिकार-क्षेत्र में था। 'महावंश' में कहा गया है कि कौटिल्य ने चंद्रगुप्त को जंबूद्वीप का सम्राट् बनाया। प्लिनी ने, जिसका वृत्तांत मेगस्थनीज की 'इंडिका' पर आधारित है, लिखा है कि मगध की सीमा सिंधु नदी है। पश्चिम में सौराष्ट्र चंद्रगुप्त के अधिकार में था। इसकी पुष्टि शक महाक्षत्रप रुद्रदमन के जूनागढ़ अभिलेख से होती है। मैसूर से प्राप्त कुछ शिलालेखों के अनुसार, उत्तरी मैसूर में चंद्रगुप्त का शासन था। एक अभिलेख मिला है जिसके अनुसार शिकापुर ताल्लुके के नागरखंड की रक्षा मौर्यों की जिम्मेदारी थी। यह उल्लेख 14वीं शताब्दी का है।

अशोक के शिलालेखों से भी स्पष्ट है कि मैसूर मौर्य साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग था। प्लूटार्क, जस्टिन, तमिल ग्रंथों तथा मैसूर के अभिलेखों के सम्मिलित प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रथम मौर्य सम्राट् ने विंध्य पार के काफी भारतीय हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

सेल्यूकस का प्रभाव

जिस समय चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य के निर्माण में तत्पर था, सिकंदर का सेनापति सेल्यूकस अपनी महानता की नींव डाल रहा था। सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके सेनानियों में यूनानी साम्राज्य की सत्ता के लिए संघर्ष हुआ, जिसके परिणामस्वरूप सेल्यूकस, पश्चिम एशिया में प्रभुत्व के मामले में, एंटीगोनस का प्रतिद्वंद्वी बना। अपने पूर्वी अभियान के दौरान वह भारत की ओर बढ़ा। ईसा पूर्व 305-4 में काबुल के मार्ग से होते हुए वह सिंधु नदी की ओर बढ़ा। उसने सिंधु नदी पार की और चंद्रगुप्त की सेना से उसका सामना हुआ। सेल्यूकस पंजाब और सिंधु पर अपना

प्रभुत्व पुन: स्थापित करने के उद्देश्य से आया था। किंतु इस समय की राजनीतिक स्थिति सिकंदर के आक्रमण के समय से काफी भिन्न थी। यूनानी लेखक स्त्रावो के अनुसार, चंद्रगुप्त मौर्य के समय में अग्रोनोमोई नामक अधिकारी नदियों की देखभाल, भूमि की नाप-जोख, जलाशयों का निरीक्षण और नहरों की देखभाल करते थे, ताकि सभी लोगों को पानी ठीक से मिल सके।

पंजाब और सिंधु अब परस्पर युद्ध करनेवाले छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त नहीं थे, बल्कि एक साम्राज्य के अंग थे। आश्चर्य की बात है कि यूनानी तथा रोमी लेखक सेल्यूकस और चंद्रगुप्त के बीच हुए युद्ध का कोई विस्तृत ब्यौरा नहीं देते। केवल एप्पियानस ने लिखा है कि सेल्यूकस ने सिंधु नदी पार की और भारत के सम्राट् चंद्रगुप्त से युद्ध छेड़ा। अंत में उनमें संधि हो गई और वैवाहिक संबंध स्थापित हो गया।

जस्टिन के अनुसार, चंद्रगुप्त से संधि करके और अपने पूर्वी राज्य को शांत करके सेल्यूकस एंटीगोनस से युद्ध करने चला गया। एप्पियानस के कथन से स्पष्ट है कि सेल्यूकस चंद्रगुप्त के विरुद्ध सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अपने पूर्वी राज्य की सुरक्षा के लिए सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त से संधि करना ही उचित समझा और उस संधि को उसने वैवाहिक संबंध से और अधिक पुष्ट कर लिया।

स्ट्रैबो का कथन है कि सेल्यूकस ने ऐरियाना के प्रदेश चंद्रगुप्त को विवाह-संबंध के फलस्वरूप दिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यूनानी राजकुमारी मौर्य सम्राट् को ब्याही गई और ये प्रदेश दहेज के रूप में दिए गए। इतिहासकारों का आमतौर पर यह मत है कि सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को चार प्रांत—1. एरिया अर्थात् काबुल, 2. अराकोसिया अर्थात् कंधार, 3. जेड्रोसिया अर्थात् मकरान और 4. परीपेमिसदाई अर्थात् हेरात प्रदेश दहेज में दिए। अशोक के शिलालेखों से सिद्ध होता है कि काबुल की घाटी मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत थी।

शासन-व्यवस्था

सेल्यूकस ने अपने राजदूत मेगस्थनीज को चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा। ये मैत्री संबंध दोनों के उत्तराधिकारियों के बीच भी बने रहे। योग्य शासक चंद्रगुप्त एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महान् विजेता ही नहीं था, वरन् एक योग्य शासक भी था। इतने बड़े साम्राज्य की शासन-व्यवस्था कोई सरल कार्य नहीं था। अत: अपने प्रधानमंत्री कौटिल्य की सहायता से उसने एक ऐसी शासन-व्यवस्था का निर्माण किया, जो उस समय के अनुकूल थी। यह शासन व्यवस्था एक हद तक मगध के पूर्वगामी शासकों द्वारा विकसित शासन-तंत्र पर आधारित थी; किंतु इसका अधिक श्रेय चंद्रगुप्त और कौटिल्य की सृजनात्मक क्षमता को ही दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य ने लिखा है कि उस समय शासन-तंत्र पर जो भी ग्रंथ उपलब्ध थे और भिन्न-भिन्न राज्यों में शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं, उन सबका भलीभाँति अध्ययन करने के बाद उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' लिखा। विद्वानों का विचार है कि मौर्य शासन व्यवस्था पर तत्कालीन यूनानी तथा आखमीनी शासन प्रणाली का भी कुछ प्रभाव पड़ा। चंद्रगुप्त ने ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित की, जिसे परवर्ती भारतीय शासकों ने भी अपनाया। इस शासन की मुख्य विशेषताएँ थीं—1. सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण, 2. विकसित आधिकारिक तंत्र, 3. उचित न्याय व्यवस्था, 4. नगर-शासन, कृषि, शिल्प उद्योग, संचार, वाणिज्य एवं व्यापार की वृद्धि के लिए राज्य के द्वारा अनेक कारगर उपाय।

चंद्रगुप्त के शासन प्रबंध का उद्देश्य लोक-हित था। जहाँ एक ओर आर्थिक विकास एवं राज्य की समृद्धि के अनेक ठोस कदम उठाए गए और शिल्पियों एवं व्यापारियों के जान-माल की सुरक्षा की गई, वहीं दूसरी ओर जनता को उनकी अनुचित तथा शोषणात्मक कार्य-विधियों से बचाने के लिए कठोर नियम भी बनाए गए। दासों और कर्मकारों को मालिकों के अत्याचार से बचाने के लिए विस्तृत नियम थे। अनाथ, दरिद्र, मृत सैनिकों तथा

राजकर्मचारियों के परिवारों के भरण-पोषण का भार राज्य के ऊपर था। तत्कालीन मापदंड के अनुसार, चंद्रगुप्त का शासन-प्रबंध एक कल्याणकारी राज्य की धारणा को चरितार्थ करता है। यह शासन निरंकुश था, दंड व्यवस्था कठोर थी और व्यक्ति की स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव था; किंतु यह सब नवजात साम्राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा के हितों को ध्यान में रखकर किया गया था।

चंद्रगुप्त की शासन व्यवस्था का चरम लक्ष्य 'अर्थशास्त्र' के निम्न उद्धरण से व्यक्त होता है—''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है और प्रजा की भलाई में उसकी भलाई। राजा को जो अच्छा लगे वह हितकर नहीं है, वरन् हितकर वह है जो प्रजा को अच्छा लगे।''

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कौटिल्य ने राजा के समक्ष प्रजा-हितैषी राजा का आदर्श रखा।

धार्मिक रुचि

चंद्रगुप्त धर्म में भी रुचि रखता था। यूनानी लेखकों के अनुसार, जिन चार अवसरों पर राजा महल से बाहर जाता था, उनमें एक था यज्ञ करना। कौटिल्य उसका पुरोहित तथा प्रधानमंत्री था। हेमचंद्र ने भी लिखा है कि वह ब्राह्मणों का आदर करता है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि चंद्रगुप्त वन में रहनेवाले तपस्वियों से परामर्श करता था और उन्हें देवताओं की पूजा के लिए नियुक्त करता था। वर्ष में एक बार विद्वानों की सभा बुलाई जाती थी, ताकि वे जनहित के लिए उचित परामर्श दे सकें। दार्शनिकों से संपर्क रखना चंद्रगुप्त की जिज्ञासु प्रवृत्ति का सूचक है। जैन अनुयायियों के अनुसार, जीवन के अंतिम चरण में चंद्रगुप्त ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि जब मगध में 12 वर्ष का अकाल पड़ा तो चंद्रगुप्त राज्य त्यागकर जैन आचार्य भद्रबाहु के साथ श्रवण बेलगोला (मैसूर के निकट) चला गया और एक सच्चे जैन भिक्षु की भाँति उसने निराहार समाधिस्थ होकर प्राण-त्याग किया (अर्थात् कैवल्य प्राप्त किया)।

900 ईसवी के बाद के अनेक अभिलेख भद्रबाहु और चंद्रगुप्त का एक साथ उल्लेख करते हैं।

मूल पुरुष

पुराणों में मौर्य वंश का मूल पुरुष चंद्रगुप्त माना गया है। पुराणों के अनुसार, चंद्रगुप्त का जन्म मुरा नामक शूद्रा से हुआ था और वह चाणक्य की सहायता से नंदों का नाश कर पाटलिपुत्र का सम्राट् हुआ था। पर बौद्ध ग्रंथों में चंद्रगुप्त को मोरिय वंश का लिखा है और उसे शुद्ध क्षत्रिय माना है। मौर्य वंश के शुद्ध क्षत्रिय होने की पुष्टि 'दिव्यावदान' में अशोक के मुँह से कहलाए हुए श्लोक—अहं क्षत्रियः कथं पलांडु परिभक्षयामि, से भी होती है, जिसमें अशोक कहता है—मैं क्षत्रिय हूँ। मैं प्याज कैसे खाऊँ।

पिप्पली कानन के मोरिया राजा का भी उल्लेख 'महापरिनिर्वाण सूत्र' में है। इससे विदित होता है कि महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल में पिप्पली कानन में मोरिय क्षत्रियों का निवास था। इससे मोरिय राजवंश की सत्ता का पता चंद्रगुप्त से बहुत पहले तक चलता है। ये मोरिय लोग शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि वंश के क्षत्रियों के संबंधी थे। जान पड़ता है, ये लोग काबुल के प्रदेशों के रहनेवाले क्षत्रिय थे और जब पारसी आर्यों ने भारतीय आर्यों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया, तब ये लोग भागकर नेपाल की तराई में चले आए और वहाँ के लोगों को अपने अधिकार में करके उन्होंने छोटे-छोटे अनेक राज्य स्थापित किए। उनके आचार आदि पर पारसी आर्यों और मध्य एशिया की अन्य जातियों का प्रभाव पड़ा था, इसलिए मनुजी ने उन्हें व्रात्यज क्षत्रिय लिखा है। संभव है, बौद्ध हो जाने के कारण ही संस्कारच्युत होने पर इन जातियों को व्रात्यज लिखा गया हो और इसलिए पुराणों में चंद्रगुप्त मौर्य के वंश के लिए भी वृषल या वर्णसंकर लिखा गया हो।

'महावंश' के टीकाकर और 'दिव्यावदान' के टीकाकारों का कथन है कि चंद्रगुप्त मोरिय नगर के राजा का पुत्र था।

जब मोरिय के राजा का ध्वंस हुआ तब उसकी गर्भवती रानी अपने भाई के साथ बड़ी कठिनता से भागकर पुष्पपुर चली आई और वहीं चंद्रगुप्त का जन्म हुआ। यह चंद्रगुप्त गौएँ चराया करता था। इसे होनहार देख चाणक्य अपने आश्रम पर लाए और उपनयन कर अपने साथ तक्षशिला ले गए।

इतिहासकारों का कथन है कि मोरिय नगर उज्जानक प्रदेश में था, जो हिंदुकुश और चित्राल के मध्य में था। इन सब बातों को देखते हुए जान पड़ता है कि जिस प्रकार निस्विश से लिच्छवि, शक से शाक्य आदि राजवंशों के नाम पड़े, उसी प्रकार मोरिय नगर के प्रथम अधिवासी होने के कारण मौर्य राजवंश की भी नाम रखा गया और आचार-व्यवहार की विभिन्नता से पुराणों में उसे 'वृषल' आदि लिखा गया। पारस की सीमा पर रहने के कारण उनके आचार-व्यवहार और रहन-सहन पर पारसियों का प्रभाव पड़ा था और चंद्रगुप्त तथा अशोक के समय के गृहों एवं राजप्रसादों का भी निर्माण पारस के भवनों के ढंग पर ही किया गया था।

चंद्रगुप्त के बाद अशोक मौर्य वंश का सबसे प्रसिद्ध सम्राट् हुआ। मौर्य साम्राज्य का ध्वंस शुंगों ने किया। पर विक्रम की आठवीं शताब्दी तक इधर-उधर मौर्यों के छोटे-छोटे राज्यों का पता लगता है। ऐसा प्रसिद्ध है और जैन ग्रंथों में भी लिखा है कि चित्तौड़ का गढ़ मौर्य या मोरी राजा चित्रांग ने बनवाया था।

सबसे बड़ा सबक

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में चीन से एक दूत आया। वह चाणक्य के साथ राजनीति के दर्शन पर विचार-विमर्श करना चाहता था। चीनी राजदूत राजशाही ठाट-बाटवाला अक्खड़ किस्म का था। उसने चाणक्य से बातचीत के लिए समय माँगा। चाणक्य ने उसे अपने घर रात को आने का निमंत्रण दिया।

उचित समय पर चीनी राजदूत चाणक्य के घर पहुँचा। उसने देखा कि चाणक्य एक छोटे से दीपक के सामने बैठकर कुछ लिख रहे हैं। उसे आश्चर्य हुआ कि चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार का बड़ा ओहदेदार मंत्री इतने छोटे से दीये का प्रयोग कर रहा है।

चीनी राजदूत को आया देख चाणक्य खड़े हुए और आदर-सत्कार के साथ उसका स्वागत किया। इससे पहले कि बातचीत प्रारंभ हो, चाणक्य ने वह छोटा सा दीपक बुझा दिया और एक बड़ा दीपक जलाया। बातचीत समाप्त होने के बाद चाणक्य ने बड़े दीपक को बुझाया और फिर से छोटे दीपक को जला लिया।

चीनी राजदूत को चाणक्य का यह कार्य बिलकुल ही समझ में नहीं आया। चलते-चलते उसने पूछ ही लिया कि आखिर उन्होंने ऐसा क्यों किया?

चाणक्य ने कहा, ''जब आप मेरे घर पर आए तो उस वक्त मैं अपना स्वयं का निजी कार्य कर रहा था, अत: उस वक्त मैं अपना स्वयं का दीपक प्रयोग में ले रहा था। जब हमने राजकाज की बातें प्रारंभ कीं तब मैं राजकीय कार्य कर रहा था अत: मैंने राज्य का दीपक जलाया। जैसे ही हमारी राजकीय बातचीत समाप्त हुई, मैंने फिर से अपना निजी दीपक जला लिया।''

चाणक्य ने आगे कहा, ''मैं कभी 'राज्य का मंत्री' होता हूँ तो कभी राज्य का 'आम आदमी'। मुझे दोनों के बीच अंतर मालूम है।''

चाणक्य की सादगी

चंद्रगुप्त मौर्य के शासन में एक चीनी यात्री पाटलिपुत्र पहुँचा तो उसकी इच्छा चंद्रगुप्त के महामंत्री चाणक्य से मिलने की हुई। उनसे मिले बिना उसे अपनी भारत यात्रा अधूरी महसूस हो रही थी। लेकिन चाणक्य कहाँ रहते हैं, इसका पता चीनी यात्री को नहीं था। वह सुबह-सुबह घूमता हुआ गंगा किनारे पहुँचा। वहाँ उसने एक वृद्ध को देखा, जो स्नान करके अपनी धोती धो रहे थे। वृद्ध ने धोती धोकर अपने घड़े में पानी भरा और वहाँ से चल पड़े।

यात्री ने उनसे कहा, 'महाशय, मैं चीन का निवासी हूँ। भारत में काफी घूमा हूँ। मौर्य शासन के महामंत्री आचार्य चाणक्य के दर्शन करना चाहता हूँ। क्या आप मुझे उनका पता बता पाएँगे?'

वृद्ध ने कहा, 'अतिथि की सहायता करके मुझे प्रसन्नता होगी। आप कृपया मेरे साथ चलें।' फिर आगे-आगे वृद्ध चले और पीछे-पीछे वह यात्री।

रास्ता नगर की ओर न जाकर जंगल की ओर जा रहा था। यात्री सोच रहा था कि चाणक्य के निवास-स्थान तक पहुँचने का जरूर यह छोटा मार्ग होगा। थोड़ी देर बाद वृद्ध एक आश्रम के निकट पहुँचे, जहाँ चारों ओर शांति थी। फूल-पत्तियों से आश्रम घिरा हुआ था। द्वार पर पहुँचकर वृद्ध ने कहा, 'महामंत्री चाणक्य अपने अतिथि का स्वागत करता है। पधारिए महाशय।'

यात्री भौंचक था। आखिर इतने बड़े साम्राज्य के महामंत्री का जीवन इतना सादगीपूर्ण हो सकता है, उसने सोचा तक न था। चाणक्य ने उसे भारतीय जीवन-पद्धति में सरलता के महत्त्व के बारे में समझाया। वह चीनी यात्री चाणक्य के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

❑

घनानंद या इंद्रदत्त

भारत के इतिहास में यह प्रचलित है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने घनानंद को पराजित कर नंद वंश का नाश किया था। किंतु यह सच नहीं है।

पाटलिपुत्र यानी आज के पटना में आज से कोई लगभग 2,342 वर्ष पहले महापद्म नंद या कहिए घनानंद नाम का सम्राट् राज करता था। उसी के समय में यूनानी आक्रमणकारी सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था। सिकंदर स्वयं को विश्व-विजयी मानता था, पर मगध साम्राज्य की सीमा तक पहुँचते-पहुँचते उसका यह घमंड चकनाचूर हो गया था। जब उसके सैनिकों ने सुना कि व्यास नदी से आगे बढ़ने पर उन्हें सम्राट् महापद्म नंद की बहुत बड़ी शक्ति से टकराना होगा तो उन्होंने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया और सिकंदर वहीं से वापस लौट गया।

उस समय पाटलिपुत्र में दो महाविद्वान् आचार्य रहते थे। उनके नाम थे वर्ष एवं उपवर्ष। उनके आश्रम में विद्याध्ययन हेतु दूर-दूर से छात्र आया करते थे। उस समय विद्यार्थियों की एक तिकड़ी बड़ी प्रसिद्ध थी। उनमें से पहला कात्यायन, दूसरा ब्याड़ी और तीसरा इंद्रदत्त था। अध्ययन की समाप्ति पर उन्होंने गुरु को कुछ गुरुदक्षिणा देनी चाही। उपवर्ष ने बहुत समझाया कि तुम गरीब ब्राह्मण हो, तुम लोग हमारी दी हुई विद्या का खूब प्रचार करो, इसी से तुम्हारी दक्षिणा की भरपाई हो जाएगी; पर वे नहीं माने। इस पर गुरु ने कहा, नहीं मानते तो लाओ एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ।

बेचारे गरीब ब्राह्मण इतनी स्वर्ण मुद्राएँ कहाँ से जुटा पाते। इधर दैव योग से उसी दिन महाराज नंद की मृत्यु हो गई। महाराज नंद की मृत्यु का समाचार सुनते ही इंद्रदत्त ने अपने दोनों साथियों से कहा, ''बस, अब बात बन गई। मैं ऐसी योग विद्या जानता हूँ, जिसके द्वारा दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता हूँ। मैं अपने शरीर को यहीं छोड़कर नंद के शरीर में प्रविष्ट हो जाता हूँ। मरकर फिर जीवित हो जाने की खुशी में मैं सारे राज्य में उत्सव मनाने और दान देने की घोषणा कर दूँगा। यहाँ कुटिया में ब्याड़ी मेरे शरीर की देखभाल करता रहे और कात्यायन प्रात:काल मेरे (महाराज नंद के) पास आ जाए। मैं उसे ढेरों स्वर्ण-मुद्राएँ दान में दिलवा दूँगा और फिर अपने इसी शरीर में आ जाऊँगा।''

तदनुसार महाराज महापद्म नंद के पुन: जीवित हो उठने पर सब लोग चकित रह गए। उधर उसने प्रात:काल ही कात्यायन को अपार धनराशि दान में देने की आज्ञा दी तो उसके चतुर मंत्री शकटार को यह समझने में देर न लगी कि महाराज महापद्म नंद के शरीर में किसी योगी की आत्मा आ गई है, जो इस गरीब ब्राह्मण को दान दिलाते ही वापस अपने शरीर में चली जाएगी। शकटार एक बड़ा ही स्वामीभक्त मंत्री था। वह नहीं चाहता था कि महाराज की फिर से मृत्यु हो जाए, इसलिए उसने आज्ञा दे दी कि देश में कहीं भी कोई भी मृत शरीर पड़ा हो, उसे तत्काल जला दिया जाए।

बेचारे इंद्रदत्त और ब्याड़ी की कुटिया में तो दरवाजे भी नहीं थे। राजकर्मचारी वहाँ भी पहुँच गए और उन्होंने इंद्रदत्त के शरीर को उठाकर अग्नि की भेंट कर दिया। महाराज महापद्म नंद के शरीर में प्रविष्ट इंद्रदत्त को जब यह पता चला तो वह बहुत छटपटाया, लेकिन अब क्या हो सकता था। विवश होकर उसे नंद के शरीर में ही रहना पड़ गया। पर उसने अब शकटार से इस कुकृत्य का बदला लेने की ठान ली।

कुछ ही दिनों बाद महापद्म नंद ने उसी शकटार को, जिसे वह अब तक प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता था, अचानक जेल में डाल दिया और उसके स्थान पर कात्यायन को अपना अमात्य यानी प्रधानमंत्री बना लिया। शकटार कई वर्षों तक जेल में पड़ा सड़ता रहा। अंत में जब उसे बंदीगृह से मुक्त किया गया तो वह इतना अशक्त

हो चुका था कि राजा नंद से किसी प्रकार का कोई बदला नहीं ले सकता था।
दैवयोग से उसे उसी समय नगर के बाहर एक ऐसा ब्राह्मण दिखाई दे गया, जो कुशा की जड़ों में मट्ठा डाल रहा था। शकटार के पूछने पर उसने बताया कि 'इन दुष्ट कुशाओं ने मेरे पैर में चुभकर मुझे कष्ट पहुँचाया है, मट्ठे से इनका समूल नाश हो जाएगा।'

यह सुनकर शकटार को लगा कि यदि यह ब्राह्मण किसी प्रकार से भी महाराजा नंद से रुष्ट हो जाए तो उसका सर्वनाश कर डालेगा। यही सोचकर उसने उसे राजा के यहाँ श्राद्ध भोजन में पहुँचा दिया। महाराज नंद को यह जानकारी न थी कि यह दुबला-पतला, साँवला सा ब्राह्मण कोई साधारण व्यक्ति नहीं, तक्षशिला से संपूर्ण विद्या पढ़कर लौटा महामति विष्णुगुप्त चाणक्य है। सम्राट् नंद ने भरी सभा में उनका अपमान कर दिया।
बस, फिर क्या था, चाणक्य ने उसी समय अपनी शिखा खोलकर नंद वंश का नाश करने की प्रतिज्ञा कर ली और कुछ ही दिनों में नंद वंश का नाश कर उसके स्थान पर चंद्रगुप्त मौर्य को सम्राट् बना दिया। इधर नंद के मरते ही कात्यायन पाटलिपुत्र से भाग निकला। किंतु गुणग्राही आचार्य चाणक्य ने उसे फिर पाटलिपुत्र बुलाया और चंद्रगुप्त का अमात्य बना दिया। वह जानता था कि कात्यायन जैसा स्वामीभक्त और विद्वान् दूसरा महामंत्री मिलना कठिन है। कात्यायन ही राक्षस नाम से जाना जाता है।

सुलह का मार्ग

चंद्रगुप्त मौर्य नंद वंश के अंतिम सम्राट् को पराजित कर मगध के सम्राट: बन गए। युद्ध में नंद राज्य के मंत्री और सेनापति या तो मारे गए या बंदी बना लिये गए; परंतु प्रधान अमात्य राक्षस हाथ नहीं आया। राक्षस योग्य प्रशासक था। उसी के बल पर मगध एक शक्तिशाली राज्य बन चुका था। चाणक्य जब अपनी कूटनीति और सैनिक बल से राक्षस को पकड़ने में असफल हो गए तो उन्होंने राक्षस के परम मित्र सेठ चंदनदास को मृत्युदंड देने की घोषणा कर दी। इस घोषणा को सुनकर राक्षस से रहा नहीं गया और वह उसके प्राण बचाने के लिए वध-स्थल पर जा पहुँचा और आत्मसमर्पण करके अपने मित्र चंदनदास को मुक्त करने की याचना की। राक्षस के आने का समाचार सुनकर चंद्रगुप्त और चाणक्य वहाँ पहुँच गए। राक्षस ने उनके सामने भी अपना अनुरोध दोहराया।
राक्षस के बुद्धि-कौशल और कूटनीतिक चातुर्य का चाणक्य भी लोहा मानते थे। उन्होंने राक्षस से विनम्रतापूर्वक कहा, ''अमात्य, हमारी दृष्टि में आपने मगध राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र किए हैं, पर हम आप जैसे योग्य मंत्री को खोना नहीं चाहते। यदि आप चंद्रगुप्त के लिए प्रधान अमात्य का पद स्वीकार कर लें तो आपके मित्र के प्राण बच सकते हैं।'' अपने मित्र के प्राण की रक्षा के लिए राक्षस के सम्मुख और कोई उपाय नहीं था। मगध के हित में उसे चाणक्य का अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। राक्षस द्वारा पद सँभालने के बाद चंद्रगुप्त मौर्य को अपने विराट् साम्राज्य में कुशल प्रशासन की स्थापना में कोई कठिनाई नहीं आई।

सीख

चंद्रगुप्त मौर्य दोपहर में वेश बदलकर नगर का निरीक्षण करने के लिए निकले। धूप व गरमी से वे बेहाल थे। एक जगह घना वृक्ष देखकर वे उसके नीचे बैठ गए। उन्हीं के ठीक सामने पेड़ के नीचे एक भिखारी फटेहाल, चीथड़ों में बैठा प्रसन्न कुछ गुनगुना रहा था। तभी वहाँ एक और भिखारी आया और चंद्रगुप्त से बोला, ''भगवान् के नाम पर कुछ दे दो। मैं दो दिन से भूखा हूँ।''
चंद्रगुप्त बोले, ''भाग यहाँ से, हट्टा-कट्टा होने पर भी हाथ फैलाता है।''
भिखारी डाँट खाकर सामने बैठे भिखारी के पास गया और उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा।
उस भिखारी ने अपनी पोटली खोली और उसमें से एक सिक्का निकालते हुए बोला, ''जा, इस समय मेरे पास यही

है। इसी से खरीदकर कुछ खा ले।''

दूसरा भिखारी पहले भिखारी को आशीष देता हुआ चला गया और पहला भिखारी फिर उसी तरह गुनगुनाने लगा। चंद्रगुप्त यह देखकर दंग रह गए कि उनके राज्य में भिखारी भी दाता है। फिर उन्हें संदेह हुआ कि कहीं यह कोई विदेशी गुप्तचर न हो। वह उसके पास जा पहुँचे और उसके बारे में पूछने लगे।

भिखारी बोला, ''मैं भिखारी हूँ और मेरा नाम कालीचरण है।''

चंद्रगुप्त बोले, ''पर तुम्हारे चेहरे पर भिखारियों जैसी दीनता नहीं बल्कि राजाओं जैसी चमक है।''

इस पर भिखारी मुसकराते हुए बोला, ''असल में मैं अपने लिए कभी कुछ नहीं चाहता, सदा दूसरों के लिए कुछ करता रहता हूँ। इससे मुझे सुख मिलता है और शायद यही मेरे चेहरे पर चमक का राज है।''

चंद्रगुप्त इस सीख को अपने जीवन में उतारने का संकल्प लिये चल पड़े।

❑

राजनीतिक एकता का सूत्रपात

यूनानी लेखकों ने चंद्रगुप्त को सेंड्रोकोटस व ऐंड्रोकोटस कहा है। चंद्रगुप्त द्वारा मौर्य वंशीय शासन की स्थापना के साथ ही भारत में एक शक्तिशाली केंद्र की स्थापना हुई तथा राजनीतिक एकता का सूत्रपात हुआ।

एक अन्य प्रचलित कथा के अनुसार, भगवान् बुद्ध के समय कोसल-नरेश विड्डभ के आक्रमण से त्रस्त होकर कुश शाक्य हिमालय में एक सुरक्षित स्थान पर बस गए थे। उस स्थान पर उन्होंने मोरिय नगर की स्थापना की तथा वहाँ रहनेवाले मौर्य कहलाए। चंद्रगुप्त मोरिय नगर के राजा के पुत्र थे। चंद्रगुप्त जिस समय अपनी माता के गर्भ में थे, तब मोरिय नगर पर एक शक्तिशाली राजा ने आक्रमण कर मोरिया राजा को मार डाला।

मोरिय रानी किसी प्रकार भागकर अपने भाइयों के पास पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) पहुँची। पुष्पपुर में ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया तथा उसे एक मवेशीशाला के निकट फेंक दिया। वहाँ पर चंद्र नामक एक वृषभ ने उनकी रक्षा की, जिससे उस बच्चे का नाम चंद्रगुप्त (चंद्र द्वारा रक्षित) पड़ा।

कुछ समय पश्चात् चंद्रगुप्त से प्रभावित होकर एक शिकारी उसे अपने साथ ले गया। चंद्रगुप्त उसी शिकारी के गाँव में रहते थे। एक दिन वे अन्य बालकों के साथ राजक्रीड़ा कर रहे थे। वे स्वयं राजा बने हुए थे और अन्य बालकों को विभिन्न अधिकारी नियुक्त कर वे वास्तविक राजा के समान न्याय कर रहे थे। उसी समय वहाँ से आचार्य चाणक्य निकले और उन्होंने चंद्रगुप्त का वह खेल देखा, जिससे वह अत्यधिक प्रभावित हुए। चाणक्य उस समय नंद राजा से अपने अपमान का प्रतिशोध लेने का अवसर ढूँढ़ रहे थे।

उन्होंने चंद्रगुप्त को शिकारी से खरीद लिया और फिर चंद्रगुप्त को तक्षशिला में समस्त प्रकार की शिक्षा दिलवाई। कालांतर में चंद्रगुप्त और चाणक्य के सम्मिलित प्रयासों से नंद वंश का उन्मूलन हुआ और मौर्य वंश तथा साम्राज्य की स्थापना कर चंद्रगुप्त मगध के शासक बने।

मौर्य साम्राज्य का आधिपत्य उत्तर में हिमालय से दक्षिण में मैसूर तक और पश्चिम में हिंदुकुश पर्वत से पूर्ण बंगाल तक था।

चंद्रगुप्त के अंतिम दिन

पाटलिपुत्र में भयंकर अकाल पड़ा था। ऐसे समय में जैन मुनि भद्रबाहु ने अपने साधकों के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। चंद्रगुप्त भी भद्रबाहु के साथ श्रवण बेलगोला चले गए तथा अपने अंतिम दिन उन्होंने वहीं साधना में बिताए। लगभग 398 ईसा पूर्व चंद्रगुप्त ने अपनी देह त्याग दी। उनके 24 वर्ष के शासन का एक नया प्रारंभ हुआ। इसके बाद चंद्रगुप्त के पुत्र बिंदुसार ने सत्ता सँभाल ली।

विदेशी बहू

चाणक्य भारतीय राजनीति और 'अर्थशास्त्र' के पहले विचारक माने जाते हैं। पाटलिपुत्र के शक्तिशाली नंद वंश को उखाड़ फेंकने और अपने शिष्य चंद्रगुप्त मौर्य को बतौर राजा स्थापित करने में चाणक्य का अहम योगदान रहा। ज्ञान के केंद्र तक्षशिला विश्वविद्यालय में आचार्य रहे चाणक्य राजनीति के चतुर खिलाड़ी थे और इसी कारण उनकी नीति कोरे आदर्शवाद पर नहीं, बल्कि व्यावहारिक ज्ञान पर टिकी है। इसे इस प्रसंग से समझें—

सम्राट: चंद्रगुप्त अपने मंत्रियों के साथ एक विशेष मंत्रणा में व्यस्त थे कि प्रहरी ने सूचित किया कि आचार्य चाणक्य राजभवन में पधार रहे हैं। सम्राट: चकित रह गए। इस असमय में गुरु का आगमन! वे घबरा भी गए। अभी वे कुछ सोचते ही कि लंबे-लंबे डग भरते चाणक्य ने सभा में प्रवेश किया।

सम्राट: चंद्रगुप्त सहित सभी सभासद सम्मान में उठ खड़े हुए। सम्राट: ने गुरुदेव को सिंहासन पर आसीन होने को

कहा। आचार्य चाणक्य बोले, ''भावुक न बनो सम्राट्:, अभी तुम्हारे समक्ष तुम्हारा गुरु नहीं, तुम्हारे राज्य का एक याचक खड़ा है। मुझे कुछ याचना करनी है।''

चंद्रगुप्त की आँखें डबडबा आईं। बोले, ''आप आज्ञा दें, समस्त राजपाट आपके चरणों में डाल दूँ।''

चाणक्य ने कहा, ''मैंने आपसे कहा, भावना में न बहें, मेरी याचना सुनें।''

गुरुदेव की मुखमुद्रा देख सम्राट्: चंद्रगुप्त गंभीर हो गए। बोले, ''आज्ञा दें।''

चाणक्य ने कहा, ''आज्ञा नहीं, याचना है कि मैं किसी निकटस्थ सघन वन में साधना करना चाहता हूँ। दो माह के लिए राजकार्य से मुक्त कर दें और यह स्मरण रहे, वन में अनावश्यक मुझसे कोई मिलने न आए। आप भी नहीं। मेरा उचित प्रबंध करा दें।''

चंद्रगुप्त ने कहा, ''सबकुछ स्वीकार है।''

दूसरे दिन प्रबंध कर दिया गया। चाणक्य वन चले गए।

अभी उन्हें वन गए एक सप्ताह भी न बीता था कि यूनान से सेल्यूकस अपने जामाता चंद्रगुप्त से मिलने भारत पधारे। उनकी पुत्री हेलेना का विवाह चंद्रगुप्त से हुआ था। दो-चार दिन के बाद उन्होंने चाणक्य से मिलने की इच्छा प्रकट कर दी। सेल्यूकस ने कहा, ''सम्राट्:, आप वन में अपने गुप्तचर भेज दें। उन्हें मेरे बारे में कहें। वे मेरा बड़ा आदर करते हैं। वे कभी इनकार नहीं करेंगे।''

अपने श्वसुर की बात मानकर चंद्रगुप्त ने ऐसा ही किया। गुप्तचर भेज दिए गए। चाणक्य ने उत्तर दिया, ''ससम्मान सेल्यूकस वन लाए जाएँ। मुझे उनसे मिलकर प्रसन्नता होगी।''

सेना के संरक्षण में सेल्यूकस वन पहुँचे। औपचारिक अभिवादन के बाद चाणक्य ने पूछा, ''मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?''

इस पर सेल्यूकस ने कहा, ''भला आपके रहते मुझे कष्ट होगा! आपने मेरा बहुत खयाल रखा।''

न जाने इस उत्तर का चाणक्य पर क्या प्रभाव पड़ा कि वे बोल उठे, ''हाँ, सचमुच आपका मैंने बहुत खयाल रखा।''

इतना कहने के बाद चाणक्य ने सेल्यूकस के भारत की भूमि पर कदम रखने के बाद से वन आने तक की सारी घटनाएँ सुना दीं। उसे इतना तक बताया कि सेल्यूकस ने सम्राट्: से क्या बात की। एकांत में अपनी पुत्री से क्या बातें हुईं। मार्ग में किस सैनिक से क्या पूछा।

सेल्यूकस व्यथित हो गए। बोले, ''इतना अविश्वास! मेरी गुप्तचरी की गई। मेरा इतना अपमान!''

चाणक्य ने कहा, ''न तो अपमान, न अविश्वास और न ही गुप्तचरी। अपमान की तो बात मैं सोच भी नहीं सकता। सम्राट्: भी इन दो महीनों में शायद न मिल पाते। आप हमारे अतिथि हैं। रही बात सूचनाओं की तो वह मेरा राष्ट्रधर्म है। आप कुछ भी हों, पर विदेशी हैं। अपनी मातृभूमि से आपकी जितनी प्रतिबद्धता है, वह इस राष्ट्र से नहीं हो सकती। यह स्वाभाविक भी है। मैं तो सम्राज्ञी की भी प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखता हूँ। मेरे इस धर्म को अन्यथा न लें। मेरी भावना समझें।''

सेल्यूकस हैरान हो गया। वह चाणक्य के पैरों में गिर पड़ा। उसने कहा, ''जिस राष्ट्र में आप जैसे राष्ट्रभक्त हों, उस देश की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता।''

वीर बालक

यूनान के सेनापति-सम्राट्: सिकंदर के मन में एक दिन यह इच्छा जागी कि वह सारे संसार पर राज करे और पूरे विश्व का सम्राट्: कहलाए। उसने युद्ध की तैयारी जोर-शोर से शुरू कर दी। फिर वह और उसकी सेना आँधी-

तूफान की तरह सबको अपनी लपेट में लेती हुई आगे बढ़ने लगी।

एक बार सिकंदर की सेनाओं ने सिंधु नदी के तट पर पड़ाव डाल रखा था। चारों ओर शिविर-ही-शिविर दिखाई देते थे। यूनानी सैनिक प्रतिदिन अस्त्र-शस्त्र चलाकर अभ्यास किया करते। सिकंदर ने अपनी सेना की व्यवस्था स्वयं अपने हाथों में ले रखी थी। उसकी सेना बड़ी परिश्रमी, शूरवीर और फुर्तीली थी। सिकंदर अपनी सेना के प्रत्येक सैनिक के दु:ख-सुख का बराबर ध्यान रखता था। इसी कारण सिकंदर से सभी सैनिक प्रसन्न थे। उसके किसी सैनिक को सिकंदर से किसी प्रकार की कोई शिकायत न थी।

एक दिन जब यूनानी सैनिक बाण चलाने का अभ्यास कर रहे थे तो एक लड़का कंधे पर धनुष-बाण और पीठ पर तरकश कसे एक वृक्ष की आड़ में छिपा हुआ यह सब तमाशा देख रहा था। अकस्मात् एक सैनिक ने उसी वृक्ष के तने पर बाण का निशाना लगाया और जब वह बाण निकालने के लिए वृक्ष के पास आया तो उसने लड़के को देख लिया। सैनिक ने आगे बढ़कर उस लड़के को पकड़ लिया। उसने देखा, हो न हो, यह अवश्य शत्रु का भेजा हुआ गुप्तचर है।

वह लड़का सैनिक से तनिक भी भयभीत नहीं हुआ और मौनपूर्वक सैनिक के साथ चलता रहा। सैनिक लड़के को अपने साथियों के पास ले आया और उसे अपने दस्ते के अफसर को सुपुर्द करके सारी घटना कह सुनाई और बताया कि शायद यह शत्रु का भेजा हुआ गुप्तचर है। अफसर उस लड़के को तुरंत सम्राट: सिकंदर की सेवा में ले गया।

सम्राट: सिकंदर ने लड़के को सिर से पाँव तक देखा और गरजकर पूछा, ''तुम कौन हो?''

लड़के ने उत्तर दिया, ''मैं एक भारतीय हूँ।''

सिकंदर तीक्ष्ण दृष्टि से लड़के की ओर देखते हुए गरजा, ''क्या तुम हमें धोखा देने आए थे?''

''नहीं, हम भारतीय किसी को धोखा देना महापाप समझते हैं।'' लड़के ने बड़ी विनम्रता से कहा।

सिकंदर ने फिर तीक्ष्ण दृष्टि का प्रहार उस पर किया और पूछा, ''फिर तुम्हारे यहाँ आने का उद्देश्य?''

लड़के ने कहा, ''हे वीर सम्राट:! मुझे बाण चलाने का बड़ा शौक है। मैंने अपने पूर्वजों से सुन रखा था कि यूनानी सैनिक बाण चलाना अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए इसी विचार से आपकी सेना के पास आया था, ताकि बाण चलाना सीख सकूँ*।''

सम्राट: सिकंदर ने क्रोध से लड़के की ओर देखा। लड़के के चेहरे पर भय और आशंका की छाया तक न थी। सिकंदर ने उद्विग्न होकर कहा, ''ऐ अबोध लड़के! क्या तुझे इस बात का पता नहीं है कि तू शत्रु की ओर आ गया है। क्या तू नहीं जानता कि मैं तेरे देश का शत्रु हूँ? यदि मैं तुझे बंदी बना लूँ या मार डालूँ तो?''

लड़के ने तत्काल कहा, ''यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सम्राट: सिकंदर शूरवीर सम्राट: हैं। हमारे देश में एक शूरवीर दूसरे शूरवीर का कभी अपमान नहीं करता। यही सब सोचकर यहाँ चला आया था। अब आप जो चाहे करें, आपकी इच्छा है। मैं जानता हूँ कि सिकंदर सम्राट: जो कह देते हैं वह कर गुजरते हैं। संसार की कोई शक्ति सम्राट: सिकंदर को रोक नहीं सकती।''

सम्राट: सिकंदर उस वीर बालक की वीरता व साहस पर मंत्रमुग्ध रह गया और भाव-विभोर हो उठा। उसने प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया। बालक की पीठ थपथपाते हुए कहा, ''जाओ, वीर बालक! तुम स्वतंत्रता के साथ यूनानी सैनिकों के बीच घूम सकते हो और उनसे बाण चलाना सीख सकते हो। मेरी ओर से अनुमति है।''

वही वीर बालक बाद में चंद्रगुप्त मौर्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

❑

मौर्य साम्राज्य का इतिहास

चंद्रगुप्त मौर्य ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य गणतंत्र व्यवस्था पर राजतंत्र व्यवस्था की जीत थी। इस कार्य में 'अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक द्वारा चाणक्य ने सहयोग किया। आर्यों के आगमन के बाद यह प्रथम स्थापित साम्राज्य था।

मौर्य साम्राज्य का शासन पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान और बलूचिस्तान तक फैला था। उनके पौत्र अशोक ने, जिन्हें आरंभिक भारत का सर्वप्रसिद्ध शासक माना जा सकता है, कलिंग आधुनिक उड़ीसा पर विजय प्राप्त की। मौर्य साम्राज्य के इतिहास की रचना के लिए इतिहासकारों ने विभिन्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया है। इनमें पुरातात्त्विक प्रमाण भी शामिल हैं, विशेषतया मूर्तिकला। मौर्यकालीन इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु समकालीन रचनाएँ भी मूल्यवान् सिद्ध हुई हैं, जैसे चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आए यूनानी राजदूत मेगस्थनीज द्वारा लिखा गया विवरण। आज इसके कुछ अंश ही उपलब्ध हैं। एक और स्रोत, जिसका उपयोग प्राय: किया जाता है, वह है 'अर्थशास्त्र'। संभवत: इसके कुछ भागों की रचना कौटिल्य या चाणक्य ने की थी, जो चंद्रगुप्त के मंत्री थे। साथ ही मौर्य शासकों का उल्लेख परवर्ती जैन, बौद्ध और पौराणिक ग्रंथों तथा संस्कृत वाङ् मय में भी मिलता है। यद्यपि उक्त साक्ष्य बड़े उपयोगी हैं, लेकिन पत्थरों और स्तंभों पर मिले अशोक के अभिलेख प्राय: सबसे मूल्यवान स्रोत माने जाते हैं। अशोक वह पहला सम्राट: था जिसने अपने अधिकारियों और प्रजा के लिए संदेश प्राकृतिक पत्थरों और पॉलिश किए हुए स्तंभों पर लिखवाए थे।

अशोक ने अपने अभिलेखों के माध्यम से धम्म का प्रचार किया। इनमें बड़ों के प्रति आदर, संन्यासियों और ब्राह्मणों के प्रति उदारता, सेवकों और दासों के साथ उदार व्यवहार तथा दूसरे के धर्मों और परंपराओं का आदर शामिल हैं।

जिस समय चंद्रगुप्त राजा बना था, भारत की राजनीतिक स्थिति बहुत खराब थी। उसने सबसे पहले एक सेना तैयार की और सिकंदर के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ किया। 317 ईसा पूर्व तक उसने संपूर्ण सिंध और पंजाब प्रदेश पर अधिकार कर लिया। अब चंद्रगुप्त मौर्य सिंध व पंजाब का एकच्छत्र शासक हो गया। पंजाब और सिंध विजय के बाद चंद्रगुप्त तथा चाणक्य ने घनानंद का नाश करने हेतु मगध पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में घनानंद मारा गया। अब चंद्रगुप्त भारत के एक विशाल साम्राज्य मगध का शासक बन गया।

सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलेना का विवाह चंद्रगुप्त से कर दिया। उसने मेगस्थनीज को राजदूत के रूप में चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त किया।

बिंदुसार

बिंदुसार चंद्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था, जिसे वायुपुराण में मद्रसार और जैन साहित्य में सिंहसेन कहा गया है। यूनानी लेखक ने इन्हें अभिलोचेटसन कहा है। यह 298 ईसा पूर्व मगध साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। जैन ग्रंथों के अनुसार बिंदुसार की माता दुर्धरा थी। थेरवाद परंपरा के अनुसार, वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था।

बिंदुसार के समय में भारत का पश्चिम एशिया से व्यापारिक संबंध अच्छा था। बिंदुसार के दरबार में सीरिया के राजा एंतियोकस ने डायमाइकस नामक राजदूत भेजा था। मिस्र के राजा टॉलेमी के काल में डाइनोसियस नामक राजदूत मौर्य दरबार में बिंदुसार की राज्यसभा में आया था।

'दिव्यावदान' के अनुसार, बिंदुसार के शासनकाल में तक्षशिला में दो विद्रोह हुए थे, जिनका दमन करने के लिए पहली बार अशोक को तथा दूसरी बार सुसीम को भेजा गया।

प्रशासन के क्षेत्र में बिंदुसार ने अपने पिता का ही अनुसरण किया। उसने भी उपराजा के रूप में कुमार नियुक्त किए। 'दिव्यावदान' के अनुसार अशोक अवंति का उपराजा था। बिंदुसार की सभा में 500 सदस्योंवाली मंत्रिपरिषद् थी, जिसका प्रधान खल्लाटक था। बिंदुसार ने 25 वर्षों तक राज्य किया। 273 ईसा पूर्व उसकी मृत्यु हो गई।

अशोक

राजगद्दी प्राप्त होने के बाद अशोक को अपनी आंतरिक स्थिति सुदृढ़ करने में चार वर्ष लगे। इस कारण राज्यारोहण चार साल बाद 269 ईसा पूर्व में हुआ था।

वह 273 ईसा पूर्व में सिंहासन पर बैठा। अभिलेखों में उसे कई उपाधियों से संबोधित किया गया है। मास्की तथा गर्जरा के लेखों में उसका नाम अशोक तथा पुराणों में उसे अशोकवर्धन कहा गया है। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार, अशोक ने 99 भाइयों की हत्या करके राजसिंहासन प्राप्त किया था; लेकिन इस उत्तराधिकार के लिए कोई स्वतंत्र प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है।

'दिव्यावदान' में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी है, जो चंपा के एक ब्राह्मण की पुत्री थी। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार, उज्जयिनी जाते समय अशोक विदिशा में रुका, जहाँ उसने श्रेष्ठी की पुत्री देवी से विवाह किया, जिससे महेंद्र और संघमित्रा का जन्म हुआ।

'दिव्यावदान' में उसकी एक पत्नी का नाम तिष्यरक्षिता मिलता है। एक लेख में उसकी पत्नी का नाम करुणावकि है, जो तीवर की माता थी। बौद्ध परंपरा एवं कथाओं के अनुसार, बिंदुसार अशोक को राजा नहीं बनाकर सुसीम को सिंहासन पर बैठाना चाहता था; लेकिन अशोक एवं बड़े भाई सुसीम के बीच युद्ध की चर्चा है।

कलिंग युद्ध

अशोक ने अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष 261 ईसा पूर्व में कलिंग पर आक्रमण किया था। आंतरिक अशांति से निपटने के बाद 269 ईसा पूर्व में उसका विधिवत् अभिषेक हुआ। तेरहवें शिलालेख के अनुसार कलिंग युद्ध में 1 लाख 50 हजार व्यक्ति बंदी बनाकर निर्वासित कर दिए गए। 1 लाख लोगों की हत्या कर दी गई। सम्राट: अशोक ने भारी नर-संहार को अपनी आँखों से देखा। इससे द्रवित होकर उसने शांति, सामाजिक प्रगति तथा धार्मिक प्रचार किया।

कलिंग युद्ध ने अशोक के हृदय में महान् परिवर्तन कर दिया। उसका हृदय मानवता के प्रति दया और करुणा से उद्वेलित हो गया। उसने युद्ध क्रियाओं को सदा के लिए बंद कर देने की प्रतिज्ञा की। यहाँ से आध्यात्मिक और धम्म विजय का युग शुरू हुआ। उसने बौद्ध धर्म को अपना धर्म स्वीकार किया।

सिंहली अनुश्रुतियों दीपवंश एवं महावंश के अनुसार, अशोक को अपने शासन के चौदहवें वर्ष में निगोथ नामक भिक्षु द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा दी गई थी। तत्पश्चात् मोगाली पुत्र तिष्य के प्रभाव से वह पूर्णत: बौद्ध हो गया था। 'दिव्यावदान' के अनुसार अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का श्रेय उपगुप्त नामक बौद्ध भिक्षुक को जाता है। अपने शासनकाल के दसवें वर्ष में अशोक ने सर्वप्रथम बोधगया की यात्रा की थी। तदुपरांत अपने राज्याभिषेक के बीसवें वर्ष में लुंबिनी की यात्रा की थी और लुंबिनी ग्राम को कर-मुक्त घोषित कर दिया था।

अशोक एवं बौद्ध धर्म

कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म अपना लिया। अशोक के शासनकाल में ही पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता मोगाली पुत्र तिष्य ने की। इसी में 'अभिधम्मपिटक' की रचना हुई और बौद्ध भिक्षु विभिन्न देशों में भेजे गए, जिनमें अशोक के पुत्र महेंद्र एवं पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा गया।

विद्वानों ने अशोक की तुलना विश्व इतिहास की महान्: विभूतियों कॉन्स्टेटाइन, एंटोनियस, अकबर, सेंटपॉल, नेपोलियन, सीजर आदि के साथ की है।

अशोक अहिंसा, शांति तथा लोक-कल्याणकारी नीतियों के विश्वविख्यात तथा अतुलनीय सम्राट्: हैं। एच.जी. वेल्स के अनुसार, 'अशोक का चरित्र इतिहास के स्तंभों को भरनेवाले राजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, संत-महात्माओं आदि के बीच प्रकाशमान है और आकाश में प्राय: एकाकी तारे की तरह चमकता है।'

अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना लिया और साम्राज्य के सभी साधनों को जनता के कल्याण हेतु लगा दिया। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए निम्नलिखित साधन अपनाए—

(1) धर्मयात्राओं का प्रारंभ, (2) राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति, (3) धर्म महापात्रों की नियुक्ति, (4) दिव्य रूपों का प्रदर्शन, (5) धर्म श्रवण एवं धर्मोपदेश की व्यवस्था, (6) लोकाचारिता के कार्य, (7) धर्मलिपियों को खुदवाना, (8) विदेशों में धर्म-प्रचार व प्रचारक भेजना आदि।

अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार धर्मयात्राओं से किया। कलिंग युद्ध के बाद आमोद-प्रमोद की यात्राओं पर पाबंदी लगा दी। अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष में लुंबिनी ग्राम की यात्रा की। नेपाल तराई में स्थित निगलीवा में उसने कनक मुनि के स्तूप की मरम्मत करवाई। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने साम्राज्य के उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त किया। स्तंभ लेख तीन और सात के अनुसार उसने व्युष्ट, रज्जुक, प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियों को जनता के बीच जाकर धर्म-प्रचार करने और उपदेश देने का आदेश दिया।

धम्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अशोक ने मानव व पशु जाति के कल्याण हेतु पशु-पक्षियों की हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया था। राज्य तथा विदेशी राज्यों में भी मानव तथा पशु के लिए अलग चिकित्सा की व्यवस्था की। अशोक के महान् पुण्य का कार्य एवं स्वर्ग-प्राप्ति का उपदेश बौद्ध ग्रंथ 'संयुक्त निकाय' में दिया गया है।

अशोक ने दूर-दूर तक बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु दूतों व प्रचारकों को विदेशों में भेजा। अपने दूसरे तथा तेरहवें शिलालेख में उसने उन देशों का नाम लिखवाया, जहाँ दूत भेजे गए थे।

अशोक के उत्तराधिकारी

मगध साम्राज्य के महान्: मौर्य सम्राट्: अशोक की मृत्यु 237-236 ईसा पूर्व में (लगभग) हुई थी। अशोक के उपरांत अगले पाँच दशक तक उनके निर्बल उत्तराधिकारी शासन संचालित करते रहे।

जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रंथों में अशोक के उत्तराधिकारियों के शासन के बारे में परस्पर विरोधी विचार पाए जाते हैं। पुराणों में अशोक के बाद 9 या 10 शासकों की चर्चा है, जबकि 'दिव्यावदान' के अनुसार 6 शासकों ने अशोक के बाद शासन किया।

अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य पश्चिमी और पूर्वी भाग में बँट गया। पश्चिमी भाग पर कुणाल शासन करता था, जबकि पूर्वी भाग पर संप्रति का शासन था; लेकिन 180 ईसा पूर्व तक पश्चिमी भाग पर बैक्ट्रिया यूनानी का पूर्ण अधिकार हो गया था। पूर्वी भाग पर दशरथ का राज्य था। अंतिम मौर्य सम्राट्: वृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र ने कर दी। वह मौर्य वंश का अंतिम शासक है।

'दिव्यावदान' के अनुसार अशोक के 6 उत्तराधिकारी ये थे—

1.दशरथ,2.संप्रति,3.शालिशूक,4.देववर्मन,5.शतधनुष और 6. वृहद्रथ।

प्रांतीय प्रशासन

चंद्रगुप्त मौर्य ने शासन-संचालन को सुचारु रूप से चलाने के लिए चार प्रांतों में विभाजित कर दिया था, जिन्हें 'चक्र' कहा जाता था। इन प्रांतों का शासन सम्राट्: के प्रतिनिधि द्वारा संचालित होता था। सम्राट्: अशोक के काल

में प्रांतों की संख्या पाँच हो गई थी। ये प्रांत थे—

प्रांत	राजधानी
अवंति राष्ट्र	उज्जयिनी
कलिंग	तोलायी
प्राची (मध्य देश)	पाटलिपुत्र
उत्तरापथ	तक्षशिला
दक्षिणापथ	सुवर्णगिरि

प्रांतों (चक्रों) का प्रशासन राजवंशीय कुमार (आर्यपुत्र) नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था। कुमार की सहायता के लिए प्रत्येक प्रांत में महापात्र नामक अधिकारी होते थे। शीर्ष पर साम्राज्य का केंद्रीय प्रभाग तत्पश्चात् प्रांत आहार (विषय) में विभक्त था। ग्राम प्रशासन की निम्न इकाई था। 100 ग्राम के समूह को संग्रहण कहा जाता था। आहार विषयपति के अधीन होता था। जिले का प्रशासनिक अधिकारी स्थानिक था। गोप दस गाँव की व्यवस्था करता था।

नगर प्रशासन

मेगस्थनीज के अनुसार, मौर्य शासन का नगरीय प्रशासन छह समतियों में विभक्त था।

प्रथम समिति—उद्योग शिल्पों का निरीक्षण करती थी।

द्वितीय समिति—विदेशियों की देखरेख करती थी।

तृतीय समिति—जनगणना कार्य।

चतुर्थ समिति—व्यापार वाणिज्य की व्यवस्था।

पंचम समिति—विक्रय की व्यवस्था, निरीक्षण।

षष्ठ समिति—बिक्री कर की व्यवस्था।

नगर में अनुशासन बनाए रखने के लिए तथा अपराधों पर नियंत्रण रखने हेतु पुलिस व्यवस्था थी, जिसे 'रक्षित' कहा जाता था।

यूनानी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि नगर प्रशासन में तीन प्रकार के अधिकारी होते थे—एग्रोनोयोई (जिलाधिकारी), एंटीनोयोई (नगर आयुक्त), सैन्य अधिकारी।

मौर्य साम्राज्य का पतन

मौर्य सम्राट: की मृत्यु (237-236 ईसा पूर्व) के उपरांत करीब दो सदियों (322-184 ईसा पूर्व) से चले आ रहे शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य का विघटन होने लगा।

अंतिम मौर्य सम्राट: वृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र ने कर दी। इससे मौर्य साम्राज्य समाप्त हो गया।

इसके पतन के कारण निम्नलिखित हैं—

1. अयोग्य एवं निर्बल उत्तराधिकारी, 2. प्रशासन का अत्यधिक केंद्रीयकरण, 3. राष्ट्रीय चेतना का अभाव, 4. आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताएँ, 5. प्रांतीय शासकों के अत्याचार, 6. करों की अधिकता। विभिन्न इतिहासकारों ने मौर्य वंश के पतन के लिए भिन्न-भिन्न कारणों का उल्लेख किया है—

डी.डी. कौशांबी—आर्थिक संकटग्रस्त व्यवस्था का होना। डी.एन. झा—निर्बल उत्तराधिकारी। रोमिला थापर—केंद्रीय शासन के अधिकारी तंत्र का अव्यवस्थित एवं अप्रशिक्षित होना। हर प्रसाद शास्त्री—धार्मिक नीति (ब्राह्मण-विरोधी नीति के कारण)। हेमचंद्र रायचौधरी—सम्राट: अशोक की अहिंसक एवं शांतिप्रिय नीति।

❑

मौर्य साम्राज्य : सार संक्षेप

मौर्य राजवंश (322-185 ईसा पूर्व) प्राचीन भारत का एक सुस्थापित राजवंश था। इसने 137 वर्ष भारत में राज्य किया। इसकी स्थापना का श्रेय चंद्रगुप्त मौर्य और उनके मंत्री कौटिल्य को दिया जाता है, जिन्होंने नंद वंश के सम्राट्: घनानंद को पराजित किया।

यह साम्राज्य पूर्व में मगध राज्य में गंगा नदी के मैदानों (आज का बिहार एवं बंगाल) से शुरू हुआ। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र (आज के पटना शहर के पास) थी। चंद्रगुप्त मौर्य ने 322 ईसा पूर्व में इस साम्राज्य की स्थापना की और तेजी से पश्चिम की तरफ अपने साम्राज्य का विकास किया। उसने कई छोटे-छोटे क्षेत्रीय राज्यों के आपसी मतभेदों का फायदा उठाया, जो सिकंदर के आक्रमण के बाद पैदा हो गए थे। 316 ईसा पूर्व तक मौर्य वंश ने पूरे उत्तर-पश्चिमी भारत पर अधिकार कर लिया था। अशोक के राज्य में मौर्य वंश का बेहद विस्तार हुआ।

मौर्यवंशी शासकों की सूची

चंद्रगुप्त मौर्य—322 ईसा पूर्व-298 ईसा पूर्व
बिंदुसार—297 ईसा पूर्व-272 ईसा पूर्व
अशोक—273 ईसा पूर्व-232 ईसा पूर्व
दशरथ—मौर्य 232 ईसा पूर्व-224 ईसा पूर्व
संप्रति—224 ईसा पूर्व-215 ईसा पूर्व
शालिसुक—215 ईसा पूर्व-202 ईसा पूर्व
देववर्मन्—202 ईसा पूर्व-195 ईसा पूर्व
शतधन्वन् मौर्य—195 ईसा पूर्व 187 ईसा पूर्व
बृहद्रथ मौर्य—187 ईसा पूर्व-185 ईसा पूर्व

325 ईसा पूर्व में उत्तर-पश्चिमी भारत (आज के पाकिस्तान का लगभग संपूर्ण क्षेत्र) सिकंदर के क्षत्रपों का शासन था। प्राचीन भारत छोटे-छोटे गणों में विभक्त था। उस वक्त कुछ ही प्रमुख शासक जातियाँ थीं, जिसमें शाक्य व मौर्य का प्रभाव ज्यादा था। चंद्रगुप्त उसी गणप्रमुख के पुत्र थे, जो कि चंद्रगुप्त की बाल्यावस्था में ही योद्धा के रूप में मारे गए। चंद्रगुप्त में राजा बनने के स्वाभाविक गुण थे। इसी योग्यता को देखते हुए चाणक्य ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया एवं एक सबल राष्ट्र की नींव डाली जो कि आज तक एक आदर्श राज्य है।

उस समय मगध भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य था। मगध पर कब्जा होने के बाद चंद्रगुप्त सत्ता के केंद्र पर काबिज हो चुका था। चंद्रगुप्त ने पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत पर विजय अभियान आरंभ किया। इसकी जानकारी अप्रत्यक्ष साक्ष्यों से मिलती है।

गुप्तचरों का जाल

मौर्य साम्राज्य के समय एक और बात, जो भारत में अभूतपूर्व थी, वो थी मौर्यों का गुप्तचर जाल। उस समय पूरे राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया गया था, जो राज्य पर किसी बाहरी आक्रमण या आंतरिक विद्रोह की खबर प्रशासन तथा सेना तक पहुँचाते थे।

भारत में सर्वप्रथम मौर्य वंश के शासनकाल में ही राष्ट्रीय राजनीतिक एकता स्थापित हुई थी। मौर्य प्रशासन में सत्ता का सुदृढ़ केंद्रीयकरण था, परंतु राजा निरंकुश नहीं होता था। मौर्य काल में गणतंत्र का ह्रस हुआ और राजतंत्रात्मक व्यवस्था सुदृढ़ हुई। कौटिल्य ने राज्य सप्तांक सिद्धांत निर्दिष्ट किया था, जिनके आधार पर मौर्य प्रशासन और

उसकी गृह व विदेश नीति संचालित होती थी—राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र।

आर्थिक एकीकरण

इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना का एक परिणाम यह हुआ कि पूरे साम्राज्य में आर्थिक एकीकरण हुआ। किसानों को स्थानीय रूप से कोई कर नहीं देना पड़ता था, हालाँकि इसके बदले उन्हें कड़ाई से पर उचित मात्रा में कर केंद्रीय अधिकारियों को देना पड़ता था।

उस समय की मुद्रा पण थी। 'अर्थशास्त्र' में इन पणों के वेतनमानों का भी उल्लेख मिलता है। न्यूनतम वेतन 60 पण होता था, जबकि अधिकतम वेतन 48,000 पण था।

धार्मिक स्थिति

छठी सदी ईसा पूर्व (मौर्यों के उदय के लगभग 200 वर्ष पूर्व) तक भारत में धार्मिक संप्रदायों का प्रचलन था। ये सभी धर्म किसी-न-किसी रूप से वैदिक प्रथा से जुड़े थे। छठी सदी ईसा पूर्व में लगभग 62 संप्रदायों के अस्तित्व का पता चला है, जिसमें बौद्ध व जैन संप्रदाय का उदय कालांतर में अन्य की अपेक्षा अधिक हुआ। मौर्यों के आते-आते बौद्ध व जैन संप्रदायों का विकास हो चुका था। उधर, दक्षिण में शैव एवं वैष्णव संप्रदाय भी विकसित हो रहे थे।

चंद्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म अपना लिया था। ऐसा कहा जाता है कि चंद्रगुप्त अपना राजसिंहासन त्यागकर अपने गुरु जैन मुनि भद्रबाहु के साथ कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में संन्यासी के रूप में रहने लगा था। इसके बाद के शिलालेखों में भी ऐसा पाया जाता है कि चंद्रगुप्त ने उसी स्थान पर एक सच्चे निष्ठावान जैन की तरह आमरण उपवास करके दम तोड़ा था। वहाँ पास में ही चंद्रगिरि नाम की पहाड़ी है, जिसका नामकरण शायद चंद्रगुप्त के नाम पर ही किया गया था।

अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म को अपना लिया था। इसके बाद उसने धम्म के प्रचार में अपना ध्यान लगाया। यहाँ धम्म का मतलब कोई धर्म या मजहब या रिलीजन न होकर नैतिक सिद्धांत था। उस समय न तो इसलाम का जन्म हुआ था और न ही ईसाइयत का। अत: उन नैतिक सिद्धांतों का जोर उस समय बाहर के किसी धर्म का विरोध करना नहीं होकर मनुष्य को एक नैतिक नियम प्रदान करना था। अपने दूसरे शिलालेख में उसने लिखा है—''धम्म क्या है? अल्प दुष्कर्म तथा अधिक सत्कर्म। रोष, निर्दयता, क्रोध, घमंड व ईर्ष्या जैसी बुराइयों से बचना तथा दया, उदारता, सच्चाई, संयम, सरलता, हृदय की पवित्रता नैतिकता में आसक्ति एवं आंतरिक व बाह्य पवित्रता आदि सदाचारों का पालन।''

बौद्ध धर्म को अपनाने के बाद उसने इसे जीवन में उतारने की भी कोशिश की। उसने शिकार करना और पशुओं की हत्या करना छोड़ दिया तथा मनुष्यों तथा जानवरों के लिए चिकित्सालयों की स्थापना कराई। उसने ब्राह्मणों तथा विभिन्न धार्मिक पंथों के संन्यासियों को उदारतापूर्वक दान दिया। इसके अलावा उसने विश्रामगृह, धर्मशाला, कुएँ तथा बावड़ियों का भी निर्माण कराया।

मगध का इतिहास

मगध का सर्वप्रथम उल्लेख 'अथर्ववेद' में मिलता है। 'अभियान चिंतामणि' के अनुसार, मगध को कीकट कहा गया है। मगध बुद्धकालीन समय में एक शक्तिशाली राजतंत्रों में एक था। यह दक्षिणी बिहार में स्थित था, जो कालांतर में उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया। यह गौरवमयी इतिहास और राजनीतिक एवं धार्मिकता का विश्व केंद्र बन गया।

मगध महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विंध्य पर्वत तक, पूर्व में चंपा से पश्चिम में सोन नदी तक

विस्तृत थी। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह थी। यह पाँच पहाड़ियों से घिरा नगर था। कालांतर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई। मगध राज्य में तत्कालीन शक्तिशाली राज्य कोसल, वत्स व अवंति को अपने जनपद में मिला लिया। इस प्रकार मगध का विस्तार अखंड भारत के रूप में हो गया और प्राचीन मगध का इतिहास ही भारत का इतिहास बना।

मगध प्राचीनकाल से ही राजनीतिक उत्थान, पतन एवं सामाजिक-धार्मिक जागृति का केंद्रबिंदु रहा है। मगध के उत्कर्ष में निम्न वंशों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है—

बृहद्रथ वंश

यह सबसे प्राचीनतम राजवंश था। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार, जरासंध के पिता तथा चेदिराज वसु के पुत्र बृहद्रथ ने बृहद्रथ वंश की स्थापना की। इस वंश में दस राजा हुए, जिसमें बृहद्रथ का पुत्र जरासंध एक प्रतापी सम्राट्: था।

जरासंध ने काशी, कोसल, चेदि, मालवा, विदेह, अंग, कलिंग, कश्मीर और गंधार आदि राज्यों को पराजित किया। भगवान्: श्रीकृष्ण की सहायता से पांडु-पुत्र भीम ने जरासंध का द्वंद्व युद्ध में वध कर दिया।

वैशाली

बुद्धकाल में सबसे यह एक बड़ा तथा शक्तिशाली राज्य था। इस गणराज्य की स्थापना सूर्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने की थी, जो कालांतर में 'वैशाली' के नाम से विख्यात हुआ। ईसा पूर्व सातवीं सदी में वैशाली राजतंत्र से गणतंत्र में परिवर्तित हो गया।

हर्यक वंश

इस वंश की स्थापना बिंबिसार ने 544 ईसा पूर्व में की। इसके साथ ही राजनीतिक शक्ति के रूप में बिहार का सर्वप्रथम उदय हुआ। बिंबिसार को मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। बिंबिसार ने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनाया। वह एक कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी शासक था। उसने वैवाहिक संबंधों (कोसल, वैशाली एवं पंजाब) की नीति अपनाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

महावग्ग के अनुसार, बिंबिसार की 500 रानियाँ थीं। उसने अवंति के शक्तिशाली राजा चंद्र प्रद्योत के साथ मैत्री संबंध बनाए। सिंध के शासक रुद्रायन तथा गंधार के मुक्कु रगति से भी उसके मैत्री संबंध थे। उसने अंग राज्य को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया तथा वहाँ अपने पुत्र अजातशत्रु को उपराजा नियुक्त किया था।

बिंबिसार महात्मा बुद्ध का मित्र और संरक्षक था। 'विनयपिटक' के अनुसार, बुद्ध से मिलने के बाद उसने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया, लेकिन जैन और ब्राह्मण धर्म के प्रति उसकी सहिष्णुता थी। बिंबिसार ने करीब 52 वर्षों तक शासन किया। बौद्ध और जैन ग्रंथानुसार, उसके पुत्र अजातशत्रु ने उसे बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया था, जहाँ उसका 492 ईसा पूर्व में निधन हो गया।

भारतीय इतिहास में बिंबिसार प्रथम शासक था, जिसने स्थायी सेना रखी। उसकी हत्या महात्मा बुद्ध के विरोधी देवव्रत के उकसाने पर अजातशत्रु ने की थी।

अजातशत्रु

बिंबिसार के बाद अजातशत्रु मगध के सिंहासन पर बैठा। उसके बचपन का नाम कुणिक था। अजातशत्रु ने अपने पिता के साम्राज्य-विस्तार की नीति को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार, उसने लगभग 32 वर्षों तक शासन किया और 460 ईसा पूर्व में अपने पुत्र उदयन द्वारा मारा गया।

अजातशत्रु के शासनकाल में ही महात्मा बुद्ध (487 ईसा पूर्व) तथा महावीर (468 ईसा पूर्व) का महापरिनिर्वाण

हुआ था।

उदयन

अजातशत्रु के बाद 460 ईसा पूर्व में उदयन मगध का राजा बना। बौद्ध ग्रंथानुसार इसे पितृहंता, लेकिन जैन ग्रंथानुसार पितृभक्त कहा गया है। उदयन पिता की तरह ही वीर और विस्तारवादी नीति का पालक था।

इसने पाटलिपुत्र नगर बसाया तथा अपनी राजधानी राजगृह से पाटलिपुत्र स्थापित की। मगध के प्रतिद्वंद्वी राज्य अवंति के गुप्तचर द्वारा उदयन की हत्या कर दी गई।

इसके बाद उदयन के तीन पुत्र अनिरुद्ध, मंडक और नागदासक ने राज्य किया। राजा नागदासक अत्यंत विलासी और निर्बल था। राज्य विद्रोह कर उसका सेनापति शिशुनाग राजा बन गया। इस प्रकार हर्यक वंश का अंत हो गया और शिशुनाग वंश की स्थापना 412 ईसा पूर्व में हुई।

शिशुनाग वंश

शिशुनाग 412 ईसा पूर्व गद्दी पर बैठा। पुराणों के अनुसार वह क्षत्रिय था। उसने मगध राज्य का बंगाल की सीमा से मालवा तक विस्तार कर लिया। शिशुनाग एक शक्तिशाली शासक था, जिसने गिरिव्रज के अलावा वैशाली नगर को भी अपनी राजधानी बनाया। 394 ईसा पूर्व में इसकी मृत्यु हो गई।

कालाशोक

शिशुनाग की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कालाशोक मगध का शासक बना। 'महावंश' में इसे कालाशोक तथा पुराणों में 'काकवर्ण' कहा गया है। कालाशोक ने अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर लिया। इसने 28 वर्ष शासन किया। कालाशोक के शासनकाल में ही बौद्ध धर्म की द्वितीय संगीति का आयोजन हुआ।

बाणभट्ट के ग्रंथ 'हर्षचरित' के अनुसार, राजधानी पाटलिपुत्र में एक सार्वजनिक शोभायात्रा के दौरान महापद्मनंद नामक व्यक्ति ने चाकू मारकर 366 ईसा पूर्व में कालाशोक की हत्या कर दी थी। इसी महापद्मनंद नामक व्यक्ति ने आगे चलकर नंद वंश की स्थापना की थी।

महाबोधि वंश के अनुसार, कालाशोक के दस पुत्र थे, जिन्होंने मगध पर 22 वर्षों तक शासन किया। 344 ईसा पूर्व में शिशुनाग वंश का अंत हो गया और नंद वंश का उदय हुआ।

नंद वंश

344 ईसा पूर्व में महापद्मनंद ने नंद वंश की स्थापना की। पुराणों में इसे महापद्म तथा 'महाबोधि वंश' में उग्रसेन कहा गया है। महापद्मनंद पहला शासक था जिसने गंगा घाटी की सीमाओं का अतिक्रमण कर विंध्य पर्वत के दक्षिण तक विजय पताका फहराई। नंद वंश के समय मगध राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्धिशाली साम्राज्य बन गया।

व्याकरण के आचार्य पाणिनि महापद्मनंद के मित्र थे। वर्ष, उपवर्ष, वररुचि, कात्यायन जैसे विद्वान् नंद शासन में हुए।

शकटार तथा स्थूलभद्र महापद्मनंद उर्फ घनानंद के जैन मतावलंबी अमात्य थे।

चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु चाणक्य की सहायता से घनानंद की हत्या कर मौर्य वंश की नींव डाली।

❑

मौर्य साम्राज्य के परवर्ती राजवंश

मौर्य साम्राज्य के अंतिम शासक बृहद्रथ की हत्या करके 184 ईसा पूर्व में पुष्यमित्र ने मौर्य साम्राज्य के राज्य पर अधिकार कर लिया। उसने जिस नए राजवंश की स्थापना की, उसे पूरे देश में शुंग राजवंश के नाम से जाना गया।

शुंग राजवंश

शुंग ब्राह्मण थे। पुष्यमित्र ने 'सेनानी' की उपाधि धारण की थी। दीर्घकाल तक मौर्यों की सेना का सेनापति होने के कारण वह इसी रूप में विख्यात था और राजा बन जाने के बाद भी उसने अपनी यह उपाधि बनाए रखी। शुंग काल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान हुआ। 'मनुस्मृति' के वर्तमान स्वरूप की रचना इसी युग में हुई।

परवर्ती मौर्यों के निर्बल शासन में मगध का शासन-तंत्र शिथिल पड़ गया था और देश को आंतरिक एवं बाह्य संकटों का खतरा था। ऐसी विकट स्थिति में पुष्यमित्र शुंग ने यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा की और देश में शांति-व्यवस्था स्थापित की।

शुंग राजाओं का काल वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का पुनर्जागरण काल माना जाता है। पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान किया।

माना जाता है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध धर्मावलंबियों पर बहुत अत्याचार किया, लेकिन संभवत: इसका कारण बौद्धों द्वारा विदेशी आक्रमण अर्थात् यवनों की मदद करना था। पुष्यमित्र ने अशोक द्वारा निर्मित 84 हजार स्तूपों को नष्ट करवा दिया। बौद्ध ग्रंथ 'दिव्यावदान' के अनुसार, यह भी सच है कि उसने कुछ बौद्धों को अपना मंत्री नियुक्त कर रखा था। पुराणों के अनुसार, पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक शासन किया।

पुष्यमित्र का शासन-प्रबंध

शुंग साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। पुष्यमित्र प्राचीन मौर्य साम्राज्य के मध्यवर्ती भाग को सुरक्षित रख सकने में सफल रहा। पुष्यमित्र का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में बरार तक तथा पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में मगध तक विस्तीर्ण था। 'दिव्यावदान' और 'तारानाथ' के अनुसार, जालंधर और स्यालकोट पर भी उसका अधिकार था।

साम्राज्य के विभिन्न भागों में राजकुमार या राजकुल के लोगों को राज्यपाल नियुक्त करने की परंपरा चलती रही। पुष्यमित्र ने अपने पुत्रों को साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में सह-शासक नियुक्त कर रखा था और उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा का उपराजा था। धनदेव कौशल का राज्यपाल था।

इस समय भी ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। इस काल तक आते-आते मौर्यकालीन केंद्रीय नियंत्रण में शिथिलता आ गई थी तथा सामंतीकरण की प्रवृत्ति सक्रिय होने लगी थी।

कण्व राजवंश

वसुदेव पाटलिपुत्र के कण्व वंश का प्रवर्तक था। शुंग वंश के अंतिम शासक देवभूति की हत्या कर उसने सत्ता प्राप्त करके कण्व वंश की स्थापना की।

वैदिक धर्म एवं संस्कृति संरक्षण की जो परंपरा शुंगों ने प्रारंभ की थी, उसे कण्व वंश ने जारी रखा। इस वंश का अंतिम सम्राट: सुशमी कण्व अत्यंत अयोग्य और दुर्बल था। उसके शासनकाल में मगध क्षेत्र संकुचित होने लगा। कण्व वंश का साम्राज्य बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक सीमित हो गया और अनेक प्रांतों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया तथा कण्व वंश का पतन होता चला गया। इस वंश के चार राजाओं ने 75 ईसा पूर्व से 30 ईसा पूर्व तक शासन किया।

कुषाण वंश

इसके बाद मगध पर कुषाण वंश का शासन रहा। कुषाण शासक कनिष्क द्वारा पाटलिपुत्र पर आक्रमण किए जाने और वहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को अपने दरबार में प्रश्रय देने की चर्चा मिलती है।

कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद मगध पर सातवाहन राजाओं का शासन रहा।

मौर्य वंश के पतन के बाद दीर्घकाल तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। इसके पश्चात् नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुन:स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।

गुप्त राजवंश

गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी सदी के चौथे दशक में पड़ी तथा उत्थान चौथी सदी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारंभिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था। इस वंश की स्थापना श्रीगुप्त ने लगभग 275 ईसवी सन् में की थी।

गुप्त वंशावली में चंद्रगुप्त प्रथम के शासनकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। चंद्रगुप्त प्रथम ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की थी। इसका शासनकाल 320 ईसवी से 350 ईसवी तक था।

चंद्रगुप्त प्रथम एक दूरदर्शी सम्राट: था। उसने लिच्छवियों से सहयोग और समर्थन पाने के लिए उनकी राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाह किया। स्मिथ के अनुसार, इस वैवाहिक संबंध के परिणामस्वरूप चंद्रगुप्त ने लिच्छवियों का राज्य तथा वैशाली राज्य प्राप्त किया। लिच्छवियों के दूसरे राज्य नेपाल के राज्य को उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने मिलाया।

हेमचंद्र रायचौधरी के अनुसार, चंद्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाह कर द्वितीय मगध साम्राज्य की स्थापना की। उसने कौशांबी तथा कोसल को जीतकर अपने राज्य में मिलाया तथा साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित की।

समुद्रगुप्त

चंद्रगुप्त प्रथम के बाद 350 ईसवी में उसका पुत्र समुद्रगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विंध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिंध तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तर भारत इसमें सम्मिलित थे।

चंद्रगुप्त द्वितीय

समुद्रगुप्त का पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय 375 ईसवी में सिंहासन पर आसीन हुआ। वह विक्रमादित्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसने 375 से 415 ईसवी तक 40 वर्ष शासन किया। चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल को भारत का स्वर्णयुग भी कहा गया है। इसी के शासनकाल में फाह्यान नामक चीनी यात्री (399 ईसवी) भारत आया था।

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय की तलहटी से दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत था। चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में उसकी प्रथम राजधानी पाटलिपुत्र और द्वितीय राजधानी उज्जयिनी थी।

चंद्रगुप्त द्वितीय का काल कला व साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। उसके दरबार में विद्वानों एवं कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में नौ रत्न—कालिदास, धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट, घटकर्पर, वराहमिहिर एवं वररुचि उल्लेखनीय थे।

कुमारगुप्त प्रथम

चंद्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् 415 ईसवी में उसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम सिंहासन पर बैठा। कुमारगुप्त प्रथम का शासन शांति और सुव्यवस्था का काल था। साम्राज्य की उन्नति पराकाष्ठा पर थी। इसने अपने साम्राज्य को सुसंगठित और सुशोभित बनाए रखा।

कुमारगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के साम्राज्य में चतुर्दिक् सुख एवं शांति का वातावरण विद्यमान था। वह स्वयं वैष्णव धर्मानुयायी था, किंतु उसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया। उसी के शासनकाल में नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

स्कंदगुप्त

455 ईसवीं में कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र स्कंदगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने 12 वर्ष तक शासन किया। उसने विक्रमादित्य, क्रमादित्य आदि उपाधियाँ धारण कीं। स्कंदगुप्त एक अत्यंत लोकोपकारी शासक था, जिसे अपनी प्रजा के सुख-दु:ख की निरंतर चिंता बनी रहती थी। उसके शासनकाल में प्रजा पूरी तरह सुखी व समृद्ध थी।

जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि स्कंदगुप्त के शासनकाल में भारी वर्षा के कारण सुदर्शन झील का तटबंध टूट गया था। किंतु उसने बड़ी मात्रा में धन खर्च करके दो महीने के भीतर उस बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया था। स्कंदगुप्त के काल में ही हूणों का प्रथम आक्रमण हुआ था। हूण मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी। अपनी जनसंख्या और प्रसार के लिए वे लोग दो शाखाओं में विभाजित होकर विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गए। पूर्वी शाखा के हूणों ने भारत पर अनेक आक्रमण किए। स्कंदगुप्त ने हूणों के आक्रमण से रक्षा कर अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचाया।

स्कंदगुप्त के बाद पुरुगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुधगुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य, कुमारगुप्त, तृतीय पुरुगुप्त, दामोदरगुप्त, महासेनगुप्त, देवगुप्त, हर्षवर्धनगुप्त इत्यादि राजाओं ने शासन किया। हर्ष की मृत्यु के उपरांत उत्तर भारत में अराजकता फैल गई और 550 ईसवी में गुप्त साम्राज्य का पतन हो गया।

गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय राजनीति में विकेंद्रीयकरण एवं अनिश्चितता का माहौल उत्पन्न हो गया। अनेक स्थानीय सामंतों एवं शासकों ने साम्राज्य के विस्तृत क्षेत्रों में अलग-अलग छोटे-छोटे राजवंशों की स्थापना कर ली।

पाल वंश

इसी दौर में आठवीं सदी के मध्य में पूर्वी भारत में पाल वंश का उदय हुआ। राजा गोपाल को पाल वंश का संस्थापक माना जाता है। उसने स्वतंत्र राज्य का गठन किया और 750 ईसवी से 770 ईसवी तक शासन किया।

गोपाल के बाद उसका पुत्र धर्मपाल 770 ईसवी में सिंहासन पर बैठा। धर्मपाल ने 40 वर्षों तक शासन किया। धर्मपाल बौद्ध धर्मावलंबी था। उसने काफी मठ व बौद्ध विहार बनवाए। उसने भागलपुर जिले में स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया।

धर्मपाल के बाद उसका पुत्र देवपाल गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता की विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया। उसने 850 ईसवी तक शासन किया था। उसके बाद पाल वंश की अवनति प्रारंभ हो गई और अराजकता फैल गई। इस अराजकता के माहौल में तुर्कों का आक्रमण प्रारंभ हो गया।

सोलह महाजनपद

आरंभिक भारतीय इतिहास में छठी सदी ईसा पूर्व को एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकारी काल माना जाता है। इस काल को प्राय: आरंभिक राज्यों, नगरों, लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के साथ जोड़ा जाता है। इसी काल

में बौद्ध तथा जैन सहित विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। बौद्ध और जैन धर्म के आरंभिक ग्रंथों में 'महाजनपद' नाम से सोलह राज्यों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि महाजनपदों के नाम की सूची इन ग्रंथों में एक समान नहीं है, लेकिन वज्जि, मगध, कोसल, कुरु, पंचाल, गंधार और अवंति जैसे नाम प्राय: मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उक्त महाजनपद सबसे महत्त्वपूर्ण महाजनपदों में गिने जाते होंगे। अधिकांश महाजनपदों पर राजा का शासन होता था; लेकिन गण और संघ के नाम से प्रसिद्ध राज्यों में कई लोगों का समूह शासन करता था। इस समूह का प्रत्येक व्यक्ति 'राजा' कहलाता था।

भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध इन्हीं गणों से संबद्ध थे। वज्जि संघ की ही भाँति कुछ राज्यों में भूमि सहित अनेक आर्थिक स्रोतों पर राजा गण सामूहिक नियंत्रण रखते थे। यद्यपि स्रोतों के अभाव में इन राज्यों के इतिहास पूरी तरह लिखे नहीं जा सकते, लेकिन ऐसे कई राज्य लगभग एक हजार साल तक बने रहे।

प्रत्येक महाजनपद की एक राजधानी होती थी, जिसे प्राय: किले से घेरा जाता था। किलेबंद राजधानियों के रख-रखाव और प्रारंभिक सेना व नौकरशाही के लिए भारी आर्थिक स्रोत की आवश्यकता होती थी। लगभग छठी सदी ईसा पूर्व से संस्कृत में ब्राह्मणों ने 'धर्मशास्त्र' नामक ग्रंथों की रचना शुरू की। इनमें शासक सहित अन्य के लिए नियमों का निधार्रण किया गया और यह अपेक्षा की जाती थी कि शासक क्षत्रिय वर्ण से ही होंगे। शासकों का काम किसानों, व्यापारियों और शिल्पकारों से कर तथा भेंट वसूलना माना जाता था। क्या वनवासियों और चरवाहों से भी कर रूप में कुछ लिया जाता था? हमें इतना तो ज्ञात है कि संपत्ति जुटाने का एक वैध उपाय पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करके धन इकट्ठा करना भी माना जाता था। धीरे-धीरे कुछ राज्यों ने अपनी स्थायी सेनाएँ और नौकरशाही तंत्र तैयार कर लिये। बाकी राज्य अब भी सहायक-सेना पर निर्भर थे, जिन्हें प्राय: कृषक वर्ग से नियुक्त किया जाता था।

ईसा पूर्व छठी सदी से भी पहले भारत के सोलह महाजनपद उल्लेखनीय रहे हैं। ये महाजनपद थे—

1. अवंति : मालवा, राजधानी उज्जयिनी।
2. गंधार : पाकिस्तान स्थित पश्चिमोत्तर क्षेत्र, राजधानी तक्षशिला।
3. कंबोज : आधुनिक अफगानिस्तान, राजधानी राजापुर।
4. पंचाल : बरेली, बदायूँ और फर्रुखाबाद, राजधानी अहिच्छत्र तथा कांपिल्य।
5. शूरसेन : मथुरा के आस-पास का क्षेत्र, राजधानी मथुरा।
6. वत्स : इलाहाबाद और उसके आस-पास का क्षेत्र, राजधानी कौशांबी।
7. कौशल : अवध, राजधानी साकेत और श्रावस्ती।
8. मल्ल : जिला देवरिया, राजधानी कुशीनगर और पावा; आधुनिक पडरौना।
9. कुरु : मेरठ और थानेश्वर, राजधानी इंद्रप्रस्थ।
10. मत्स्य : जयपुर, राजधानी विराट नगर।
11. अश्मक : गोदावरी घाटी, राजधानी पांड्य।
12. काशी : वाराणसी, राजधानी वाराणसी।
13. अंग : भागलपुर, राजधानी चंपा।
14. वज्जि : जिला दरभंगा और मुजफ्फरपुर, राजधानी मिथिला, जनकपुरी और वैशाली।
15. चेदि : बुंदेलखंड, राजधानी शुक्तिमती; वर्तमान बाँदा।
16. मगध : दक्षिण बिहार, राजधानी गिरिव्रज, आधुनिक राजगृह।

सोलह महाजनपदों में प्रथम मगध

छठी से चौथी सदी ईसा पूर्व में मगध आधुनिक बिहार का सबसे शक्तिशाली महाजनपद बन गया। आधुनिक इतिहासकार इसके कई कारण बताते हैं। एक यह कि मगध क्षेत्र में खेती की उपज खास तौर पर अच्छी होती थी। दूसरे यह कि लोहे की खदानें आधुनिक झारखंड में भी आसानी से उपलब्ध थीं, जिससे उपकरण और हथियार बनाना सरल होता था। जंगली क्षेत्रों में हाथी उपलब्ध थे, जो सेना के एक महत्त्वपूर्ण अंग थे। साथ ही गंगा और इसकी उपनदियों से आवागमन सस्ता व सुलभ होता था।

लेकिन आरंभिक जैन व बौद्ध लेखकों ने मगध की महत्ता का कारण विभिन्न शासकों की नीतियों को बताया है। इन लेखकों के अनुसार बिंबिसार, अजातशत्रु और महापद्मनंद जैसे प्रसिद्ध राजा अत्यंत महत्त्वाकांक्षी शासक थे और उनके मंत्री उनकी नीतियाँ लागू करते थे। प्रारंभ में राजगृह आधुनिक बिहार के राजगीर का प्राकृत नाम मगध की राजधानी थी। यह रोचक बात है कि इस शब्द का अर्थ है 'राजाओं का घर'। पहाड़ियों के बीच बसा राजगृह एक किलेबंद शहर था। बाद में चौथी सदी ईसा पूर्व में पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया गया, जिसे अब पटना कहा जाता है, जिसकी गंगा के रास्ते आवागमन के मार्ग पर महत्त्वपूर्ण अवस्थिति थी।

मगध के विकास के साथ-साथ मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य का शासन पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान और बलूचिस्तान तक फैला था। उनके पौत्र अशोक को भारत का सर्वप्रसिद्ध शासक माना जा सकता है।

अशोक वह पहला सम्राट् था, जिसने अपने अधिकारियों और प्रजा के लिए संदेश प्राकृतिक पत्थरों और पॉलिश किए हुए स्तंभों पर लिखवाए। अशोक ने अपने अभिलेखों के माध्यम से धम्म का प्रचार किया। इनमें बड़ों के प्रति आदर, संन्यासियों और ब्राह्मणों के प्रति उदारता, सेवकों और दासों के साथ उदार व्यवहार तथा दूसरे के धर्मों व परंपराओं का आदर शामिल हैं।

साम्राज्य का प्रशासन

मौर्य साम्राज्य के पाँच प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे—राजधानी पाटलिपुत्र और चार प्रांतीय केंद्र तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली और सुवर्णगिरि। इन सबका उल्लेख अशोक के अभिलेखों में किया गया है। यदि हम इन अभिलेखों का परीक्षण करें तो पता चलता है कि आधुनिक पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत से लेकर आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और उत्तराखंड तक हर स्थान पर एक जैसे संदेश उत्कीर्ण किए गए थे।

क्या इतने विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था समान रही होगी? इतिहासकार अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसा संभव नहीं था। साम्राज्य में शामिल क्षेत्र बड़े विविध और भिन्न-भिन्न प्रकार के थे। कहाँ अफगानिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र और कहाँ उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्र। यह संभव है कि सबसे प्रबल प्रशासनिक नियंत्रण साम्राज्य की राजधानी तथा उसके आस-पास के प्रांतीय केंद्रों पर रहा हो। इन केंद्रों का चयन बड़े ध्यान से किया गया। तक्षशिला और उज्जयिनी दोनों लंबी दूरीवाले महत्त्वपूर्ण व्यापार मार्ग पर स्थित थे, जबकि सुवर्णगिरि कर्नाटक में।

साम्राज्य के संचालन के लिए भूमि और नदियों दोनों मार्गों से आवागमन बना रहना अत्यंत आवश्यक था। राजधानी से प्रांतों तक जाने में कई सप्ताह या महीनों का समय लगता होगा। इसका अर्थ यह है कि यात्रियों के लिए खान-पान की व्यवस्था और उनकी सुरक्षा भी करनी पड़ती होगी। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सेना सुरक्षा का एक प्रमुख माध्यम रही होगी।

मेगस्थनीज ने सैनिक गतिविधियों के संचालन के लिए एक समिति और छह उपसमितियों का उल्लेख किया है। इनमें से एक का काम नौसेना का संचालन करना था तो दूसरी यातायात और खान-पान का संचालन करती थी,

तीसरी का काम पैदल सैनिकों का संचालन, चौथी का अश्वारोहियों, पाँचवीं का रथारोहियों तथा छठी का काम हाथियों का संचालन करना था। दूसरी उपसमिति का दायित्व विभिन्न प्रकार का था—उपकरणों के ढोने के लिए बैलगाड़ियों की व्यवस्था, सैनिकों के लिए भोजन और जानवरों के लिए चारे की व्यवस्था करना तथा सैनिकों की देखभाल के लिए सेवकों व शिल्पकारों की नियुक्ति करना।

अशोक ने अपने साम्राज्य को अखंड बनाए रखने का प्रयास किया। ऐसा उन्होंने धम्म के प्रचार द्वारा भी किया। अशोक के अनुसार, धम्म के माध्यम से लोगों का जीवन इस संसार में और इसके बाद के संसार में अच्छा रहेगा। धम्म के प्रचार के लिए 'धम्म महामात्त' नाम से विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की गई।

❑

चंद्रगुप्त का मूल्यांकन

चंद्रगुप्त एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महान्: विजेता ही नहीं था, वरन् एक योग्य शासक भी था। इतने बड़े साम्राज्य की शासन-व्यवस्था कोई सरल कार्य नहीं था। अत: अपने महामात्य (प्रधानमंत्री) कौटिल्य की सहायता से उसने एक ऐसी शासन-व्यवस्था का निर्माण किया, जो उस समय के अनुकूल थी। यह शासन व्यवस्था एक हद तक मगध के पूर्वगामी शासकों द्वारा विकसित शासन-तंत्र पर आधारित थी, किंतु इसका अधिक श्रेय चंद्रगुप्त और कौटिल्य की सृजनात्मक क्षमता को ही दिया जाना चाहिए। कौटिल्य ने लिखा है कि उस समय शासन-तंत्र पर जो भी ग्रंथ उपलब्ध थे और भिन्न-भिन्न राज्यों में शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं, उन सबका भलीभाँति अध्ययन करने के बाद उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' लिखा।

विद्वानों का विचार है कि मौर्य शासन-व्यवस्था पर तत्कालीन यूनानी तथा आखमीनी शासन-प्रणाली का भी कुछ प्रभाव पड़ा। चंद्रगुप्त ने ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित की, जिसे परवर्ती भारतीय शासकों ने भी अपनाया।

चंद्रगुप्त के शासन प्रबंध का उद्देश्य लोकहित था। जहाँ एक ओर आर्थिक विकास एवं राज्य की समृद्धि के अनेक ठोस कदम उठाए गए और शिल्पियों एवं व्यापारियों के जान-माल की सुरक्षा की गई, वहीं दूसरी ओर जनता को उनकी अनुचित तथा शोषणात्मक कार्य-विधियों से बचाने के लिए कठोर नियम भी बनाए गए। दासों और कर्मकारों को मालिकों के अत्याचार से बचाने के लिए विस्तृत नियम थे। अनाथ, दरिद्र, मृत सैनिकों तथा राजकर्मचारियों के परिवारों के भरण-पोषण का भार राज्य के ऊपर था।

तत्कालीन मापदंड के अनुसार, चंद्रगुप्त का शासन-प्रबंध एक कल्याणकारी राज्य की धारणा को चरितार्थ करता है। यह शासन निरकुंश था, दंड व्यवस्था कठोर थी और व्यक्ति की स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव था; किंतु यह सब नवजात साम्राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा के हितों को ध्यान में रखकर किया गया था। चंद्रगुप्त की शासन-व्यवस्था का चरम लक्ष्य 'अर्थशास्त्र' के निम्न उद्धरण से व्यक्त होता है—

''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है और प्रजा की भलाई में उसकी भलाई। राजा को जो अच्छा लगे वह हितकर नहीं है, वरन् हितकर वह है जो प्रजा को अच्छा लगे।''

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कौटिल्य ने राजा के समक्ष प्रजा-हितैषी राजा का आदर्श रखा। मेगस्थनीज ने लिखा है कि चंद्रगुप्त वन में रहनेवाले तपस्वियों से परामर्श करता था और उन्हें देवताओं की पूजा के लिए नियुक्त करता था। वर्ष में एक बार विद्वानों की सभा बुलाई जाती थी, ताकि वे जनहित के लिए उचित परामर्श दे सकें।

सिकंदर की मृत्यु के बाद उसका सेनापति सेल्यूकस यूनानी साम्राज्य का शासक बना और उसने चंद्रगुप्त मौर्य पर आक्रमण कर दिया; पर उसे मुँह की खानी पड़ी। काबुल, हेरात, कंधार और बलूचिस्तान के प्रदेश देने के साथ-साथ वह अपनी पुत्री हेलेना का विवाह चंद्रगुप्त से करने के लिए बाध्य हुआ। इस पराजय के बाद अगले सौ वर्षों तक यूनानियों को भारत की ओर मुँह करने का साहस नहीं हुआ।

जैनियों का दावा है कि चंद्रगुप्त ने अपने जीवन के अंतिम समय में जैन धर्म स्वीकार कर लिया। लगभग 300 ईसा पूर्व में चंद्रगुप्त ने अपने पुत्र बिंदुसार को गद्दी सौंप दी। कहा जाता है कि जब मगध में 12 वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा तो चंद्रगुप्त राज्य त्यागकर जैन आचार्य भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) चला गया और एक सच्चे जैन भिक्षु की भाँति उसने निराहार समाधिस्थ होकर प्राण-त्याग किया (अर्थात् कैवल्य प्राप्त किया)। 900 ईसवी के बाद के अनेक अभिलेख भद्रबाहु और चंद्रगुप्त का एक साथ उल्लेख करते हैं।

मौर्य साम्राज्य का महत्त्व

उन्नीसवीं सदी में जब इतिहासकारों ने भारत के आरंभिक इतिहास की रचना करनी शुरू की तो मौर्य साम्राज्य को इतिहास का एक प्रमुख काल माना गया। इस समय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन एक औपनिवेशिक देश था। उन्नीसवीं और आरंभिक बीसवीं सदी के भारतीय इतिहासकारों को प्राचीन भारत में एक ऐसे साम्राज्य की संभावना बहुत चुनौतीपूर्ण तथा उत्साहवर्धक लगी। साथ ही प्रस्तर मूर्तियों सहित मौर्यकालीन सभी पुरातत्त्व एक अद्‌भुत कला के प्रमाण थे, जो साम्राज्य की पहचान माने जाते हैं।

इतिहासकारों को लगा कि अभिलेखों पर लिखे संदेश अन्य शासकों के अभिलेखों से भिन्न हैं। इसमें उन्हें यह लगा कि अन्य राजाओं की अपेक्षा अशोक एक बहुत शक्तिशाली और परिश्रमी शासक थे। साथ ही वे बाद के उन राजाओं की अपेक्षा विनीत भी थे, जो अपने नाम के साथ बड़ी-बड़ी उपाधियाँ जोड़ते थे। इसलिए इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी कि बीसवीं सदी के राष्ट्रवादी नेताओं ने भी अशोक को प्रेरणा का स्रोत माना।

❑

मौर्यकालीन इतिहास जानने के स्त्रोत

मौर्यकालीन इतिहास को जानने के दो मुख्य स्त्रोत हो सकते हैं—

1.पुरातात्त्विक

2.साहित्यिक।

पुरातात्त्विक स्त्रोत

किसी भी काल के इतिहास को जानने के संदर्भ पुरातात्त्विक साक्ष्य विशेष महत्त्व रखते हैं। मौर्यकालीन इतिहास के बारे में जानने के लिए पुरातात्त्विक सामग्रियों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

1.स्मारक : स्मारक से राजनीतिक स्थिति का पता नहीं चलता है, लेकिन सांस्कृतिक व सामाजिक स्थितियों का पता चलता है। प्राचीन भवनों व भग्नावशेषों का इतिहास में विशेष महत्त्व होता है। स्तूप आदि स्मारकों से तत्कालीन धार्मिक स्थितियों का ज्ञान होता है। पाटलिपुत्र में हुए उत्खनन से मौर्यकाल के अनेक भग्नावशेष प्राप्त हुए, जिनसे मौर्यकाल में वास्तु एवं स्थापत्य कला में काष्ठ के प्रयोग का प्रमाण मिलता है। अशोक द्वारा निर्मित स्तंभ, स्तूप, विहार, चैत्य व संघाराम के अवशेष विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। मौर्य शासक दशरथ द्वारा बनवाई गई कुछ गुहाएँ विद्यमान हैं। इन स्मारकों से मौर्यकालीन इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2.अभिलेख : किसी भी समय के इतिहास को जानने में अभिलेख प्रामाणिक सामग्री की भूमिका का निर्वाह करते हैं। मौर्यकालीन इतिहास की राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति के बारे में अभिलेखों से ठोस प्रमाण मिलते हैं। अभिलेख राज्य की सीमाओं के निर्धारण, राजाओं के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विषय में भी जानकारी उपलब्ध कराते हैं। अभिलेख तत्कालीन कला को भी प्रदर्शित करते हैं। अशोक के शिला एवं स्तंभ लेख बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं, जिनसे मौर्यकालीन विभिन्न विषयों पर प्रकाश पड़ता है। मौर्य शासकों के अभिलेखों के अतिरिक्त अन्य राजाओं के अभिलेखों से भी मौर्यकाल के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। कलिंग के राजा खारवेल का हाथीगुंफा लेख, रुद्रदमन का गिरनार शिलालेख व मैसूर में चंद्रगिरि पर्वत के अनेक लेखों से मौर्यकालीन महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं।

3.कलाकृतियाँ व मिट्टी के बरतन : विभिन्न स्थानों पर किए गए उत्खनन से मिट्टी की बनी हुई अनेक मूर्तियाँ व बरतन प्राप्त हुए हैं। इनका भी ऐतिहासिक महत्त्व है। इससे तत्कालीन कला, धर्म एवं सामाजिक व आर्थिक स्थिति के बारे में पता चलता है। इससे तत्कालीन ललित कला के बारे में भी पता चलता है। उत्खनन से कलाकृतियाँ और मिट्टी के बरतन प्राप्त हुए हैं, जिनसे मौर्यकालीन इतिहास के बारे में पता चलता है।

साहित्यिक स्त्रोत

मौर्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली सामग्रियों में साहित्य स्त्रोत का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संस्कृत साहित्य

संस्कृत के विभिन्न ग्रंथ मौर्यकाल संबंधी सूचना प्रदान करते हैं—

• **अर्थशास्त्र :** मौर्यकाल के इतिहास के संदर्भ में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ चंद्रगुप्त मौर्य के महामात्य (प्रधानमंत्री) चाणक्य की कृति है। आरंभ में 'अर्थशास्त्र' की तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद था, किंतु अब अधिकांश विद्वान् इसे मौर्यकाल की ही कृति मानते हैं। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में चंद्रगुप्त के शासनकाल की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य के मात्र मंत्री ही नहीं थे, वरन् मौर्य साम्राज्य के निर्माता भी थे। इसलिए चाणक्य ने अपने

'अर्थशास्त्र' में राजा के कर्तव्यों, उसकी वैदेशिक नीति, भूमि-व्यवस्था, वित्तीय व्यवस्था, कानून व्यवस्था, गुप्तचर संगठन, प्रशासनिक व्यवस्था आदि का भी वर्णन किया है।

• **पुराण :** मौर्यकाल के इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले संस्कृत ग्रंथों में पुराण भी महत्त्वपूर्ण हैं। पुराणों की संख्या 18 है। इनमें प्राचीन राजवंशों एवं शासकों के चरित्र तथा आख्यान संगृहीत हैं। हालाँकि पुराणों के वर्णन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता, फिर भी मौर्य वंश का इतिहास जानने के मामले पुराणों का काफी महत्त्व है। पुराणों में न केवल मौर्य वंशीय राजाओं का उल्लेख मिलता है बल्कि उनसे संबंधित विभिन्न घटनाओं का भी वर्णन मिलता है।

• **अन्य ग्रंथ :** 'अर्थशास्त्र' व पुराणों के अतिरिक्त संस्कृत में रचित अन्य अनेक ग्रंथों में मौर्यकाल संबंधी सूचनाएँ मिलती हैं। इस संदर्भ में विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षस' नाटक उल्लेखनीय है। इसमें चाणक्य व चंद्रगुप्त द्वारा नंद वंश का विनाश कर मौर्यवंशीय साम्राज्य की स्थापना तथा चंद्रगुप्त की विभिन्न सफलताओं का वर्णन है। क्षेमेंद्रकृत 'बृहत्कथा मंजरी' तथा सोमदेव विरचित 'कथासरित्सागर' भी मौर्य इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। मौर्य साम्राज्य की स्थापना की कथा का वर्णन मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढिराज के 'उपोत्घात' में मिलता है। महाकवि कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' से भी मौर्यों के विषय में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। इस नाटक का मौर्यकाल से सीधा संबंध नहीं है, क्योंकि यह पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र से संबंधित है। इसमें मौर्य वंश के पतन से संबंधित महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' कश्मीर के इतिहास से संबंधित है, लेकिन इसमें सम्राट् अशोक और उसके उत्तराधिकारियों का वर्णन मिलता है। पतंजलि के 'महाभाष्य' से मौर्य साम्राज्य के पतन पर प्रकाश पड़ता है। बाणभट्ट रचित 'हर्षरचित' से मौर्य वंश के अवनति काल संबंधी सामग्री प्राप्त होती है। भास द्वारा रचित नाटक मौर्यकाल पर आधारित है। भास के नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्ता' व 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध साहित्य

हालाँकि बौद्ध धर्म ई.पू. छठी सदी में अस्तित्व में आया था। मौर्य सम्राट् अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म का विस्तार हुआ था। अशोक के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म विश्वव्यापी हुआ और इसका असीमित विस्तार हुआ। इसी वजह से उसे बौद्ध लेखकों ने अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान प्रदान किया—

• **दीपवंश एवं महावंश :** बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा था। लंका में 'अट्ठकथा महावंश' नामक एक विशाल ग्रंथ लिखा गया। दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, किंतु इस पर आधारित दो ग्रंथ 'दीपवंश' व 'महावंश' उपलब्ध हैं। मौर्य वंश के इतिहास के संदर्भ में इन ग्रंथों का अत्यधिक महत्त्व है। इन ग्रंथों में अशोक एवं उसके पूर्वजों के संबंध में विस्तृत विवरण मिलता है। इसके अलावा सम्राट् अशोक की तिथि के निर्धारण में भी 'महावंश' का विशेष योगदान रहा है। 'महावंश' की टीका 'वसंत दीपनी' में चंद्रगुप्त के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इसकी रचना 12वीं सदी में हुई थी।

• **मिलिंदपन्हो :** मिलिंदपन्हो धार्मिक साहित्य है और इसकी रचना पालि भाषा में हुई है। इस बौद्ध ग्रंथ में मौर्य वंश के संबंध में काफी सामग्री मिलती है। इस ग्रंथ में मिनेंडर द्वारा उसके गुरु नागसेन से पूछे गए प्रश्न तथा नागसेन के उत्तर लिपिबद्ध हैं।

• **अट्ठकथा :** त्रिपिटकों के ग्रंथों पर लिखे गए भाष्यों को अट्ठकथा कहते हैं। इसे पालि में लिखा गया है और इसमें मूल ग्रंथ के समय की ऐतिहासिक स्थितियों का वर्णन मिलता है। अशोक के बौद्ध धर्मावलंबी होने के कारण इसमें ऐसी काफी सामग्री है, जिसमें मौर्यों के बारे में जानकारी मिलती है। अट्ठकथाओं के लेखकों में बुद्धघोष का

नाम प्रमुख है। बुद्धघोष रचित 'समंतपासादिका' मौर्य इतिहास को जानने के लिए काफी उपयोगी है। तिष्य द्वारा रचित 'कथावत्थु' से मौर्यकालीन धार्मिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। अट्ठकथाएँ मौर्य इतिहास से सीधे संबंध नहीं रखतीं, लेकिन मौर्यकालीन राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति को जानने हेतु इसमें काफी सामग्री है।

• **अन्य ग्रंथ :** बौद्ध साहित्य के अंतर्गत पालि भाषा में रचित विभिन्न ग्रंथों से भी मौर्यों के बारे में जानकारी मिलती है। वाचिस्सक का 'थूपवंश', उपतिस्स कृत 'महाबोधिवंश' व धम्मकित्ति महासामी द्वारा रचित 'सद्धम्मसंग्रह' उल्लेखनीय हैं। हालाँकि बौद्ध साहित्य के अंतर्गत अधिकांश ग्रंथों की रचना पालि भाषा में की गई थी, लेकिन कुछ ग्रंथ संस्कृत में हैं, जिनमें मौर्यों के बारे में जानकारी मिलती है। नेपाल से प्राप्त 'दिव्यावदान' की रचना ई.पू. तीसरी सदी में हुई थी। 'दिव्यावदान' के अंतर्गत 'कुणालावदान' व 'अशोकावदान' में मौर्ययुगीन सामग्री का उल्लेख है। इसके अलावा 'मंजूश्रीमूलकल्प' संस्कृत व तिब्बती भाषा में उपलब्ध है। इस ग्रंथ में मौर्यकालीन इतिहास से जुड़ी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

जैन साहित्य

जैन साहित्य में पौराणिक अथवा बौद्ध साहित्य की अपेक्षा मौर्य साम्राज्य की अधिक जानकारियाँ मिलती हैं। बौद्ध साहित्य में मूलत: अशोक का विवरण दिया गया है, जबकि पौराणिक साहित्य में मौर्य को वृषल कहा गया, जिस वजह से इसे विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। जैन साहित्य में मौर्य राजाओं का पर्याप्त वर्णन मिलता है। जैन अनुश्रुति के अनुसार, चंद्रगुप्त मौर्य जैन धर्म के अनुयायी थे। जैन धर्म के प्रमुख संप्रदायों—श्वेतांबर और दिगंबर के साहित्य से भी मौर्यकालीन इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है—

• **श्वेतांबर साहित्य :** श्वेतांबर संप्रदाय के अंतर्गत लिखे गए अनेक ग्रंथों में मौर्यकालीन इतिहास को उजागर करनेवाली उपयोगी सामग्री है। श्वेतांबर साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार हरिभद्र ने 'आवश्यक सूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें मौर्य वंश के संस्थापक चंद्रगुप्त और चाणक्य के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। मौर्यों के तिथि क्रम की दृष्टि से पट्टावलियों का विशेष महत्त्व है। परिशिष्ट पर्व में मौर्य वंश से संबंधित सामग्री उपलब्ध है। 'विचार श्रेणी' नामक ग्रंथ मौर्यकालीन इतिहास के स्रोतों के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। 'विविध तीर्थकल्प' में चाणक्य द्वारा नंद वंश का विनाश, चंद्रगुप्त को शासक बनाना तथा बिंदुसार, अशोक, कुणाल आदि के बारे में जानकारी मिलती है। मेरुतुंग के 'विचार श्रेणी' से मौर्यों के तिथि क्रम के निर्धारण में मदद मिलती है।

• **दिगंबर साहित्य :** श्रीचंद द्वारा रचित 'कथाकोष', प्रभाचंद्र का 'आराधना सत्कथा प्रबंध', हरिषेण का 'बृहत्कथाकोष' तथा नेमिदत्त रचित 'आराधनाकथाकोष' में चंद्रगुप्त तथा चाणक्य के बारे में पर्याप्त विवरण मिलता है। इनके अतिरिक्त 'पुण्याश्रवकथाकोष' भी मौर्य इतिहास के लिए अत्यंत उपयोगी है।

यूनानी व लैटिन विवरण

यूनानी साहित्य में उल्लेखित सैंड्रोकोटस व ऐंड्रोकोटस चंद्रगुप्त मौर्य का ही यूनानी नाम है। यूनानी साहित्य भी मौर्य इतिहास जानने का एक प्रमुख स्रोत है। सिकंदर के आक्रमण के समय कई यूनानी विद्वान् उसके साथ आए थे। इन विद्वानों ने भारत के संबंध में संस्मरण व वृत्तांत लिखे, जो अब उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन बाद के यूनानी लेखकों ने अपनी रचनाओं में इन बातों पर प्रकाश डाला। सिकंदर के साथ आए विद्वानों में तीन ने अपनी रचनाओं में भारत से संबंधित जिक्र किया है—

1. निआर्कस, यह सिकंदर का सहपाठी था और नौसेना का प्रधान सेनापति था।
2. ओनेसिक्रिटस, यह सिकंदर की नौसेना का सेनापति था।

3. अरिस्टोबुलस, इसने सिकंदर की विजय का वर्णन लिखा था।

हालाँकि इन विद्वानों द्वारा लिखे हुए ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन बाद के यूनानी लेखकों ने मौर्य इतिहास संबंधी उपयोगी सामग्री लिखी है। बाद के जिन लेखकों ने प्राचीन यूनानी लेखकों की कृतियों को इतिहास के साथ जोड़ा, उनमें निम्न प्रमुख हैं—

• **ट्रेबो :** ट्रेबो ने भूगोल की अत्यंत उपयोगी पुस्तक की रचना की, जिसके 15वें खंड में भारत का वर्णन किया गया है। मेगस्थनीज की 'इंडिका' के आधार पर भारत के भूगोल, वहाँ के निवासियों और रीति-रिवाजों का वर्णन मिलता है।

• **प्लिनी :** यह एक रोमन विद्वान् था। प्लिनी ने 'नेचुरल हिस्ट्री' नामक ग्रंथ की रचना थी, जो 75 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ में भारत के भूगोल तथा यहाँ के निवासियों का वर्णन किया गया है।

• **डियोडोरस :** डियोडोरस का जन्म सिसली के अगीरियस में हुआ था। डियोडोरस ने 'बिब्लओथिका हिस्टोरिका' नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें मेगस्थनीज के वर्णन के आधार पर भारत का वर्णन किया गया है।

• **प्लूटार्क :** प्लूटार्क यूनान के कैरोनिया नगर का निवासी था। उसका काल 125 ई.पू. के लगभग था। प्लूटार्क ने अनेक ग्रंथों की रचना की। उनमें से एक ग्रंथ सिकंदर की जीवनी था। उसमें सिकंदर की विजयों एवं भारत संबंधी महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन है।

• **एरियन :** एरियन का काल लगभग 130 ई. से 172 ई. तक था। एरियन ने सिकंदर के अभियानों, निआर्कस व मेगस्थनीज की रचनाओं के आधार पर भारत, इसके भूगोल, यहाँ के रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों के बारे में ग्रंथ की रचना की।

• **जस्टिन :** जस्टिन एक रोमन लेखक था। वह दूसरी सदी में हुआ था। जस्टिन ने एक एपिटोम अर्थात् 'सार-संग्रह' की रचना की थी। इसके 12वें खंड में सिकंदर के विजय अभियान का वर्णन है। उपर्युक्त ग्रंथों का मौर्य इतिहास के साथ सीधा संबंध नहीं है, किंतु ये मौर्य युगीन भारत के संबंध में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराते हैं।

चीनी व तिब्बती साक्ष्य

भारत का तिब्बत व चीन से गहरा और प्राचीन काल से संबंध रहा है। अशोक के बौद्ध धर्मानुयायी होने के कारण तिब्बती ग्रंथों में उससे संबंधित विवरण से मौर्यों के विषय में ज्ञानवर्धक सूचनाएँ मिलती हैं। मौर्यकाल में अनेक स्मारकों का भी निर्माण हुआ था। उनका अस्तित्व अब शेष नहीं है। चीनी यात्रियों में प्रमुख फाह्यान, सुंगयुन व ह्वेनसांग थे। फाह्यान गुप्तकाल में भारत आया था और 14 वर्ष तक भारत में रहकर उसने विस्तृत जानकारी एकत्रित की थी। फाह्यान ने अपने वृत्तांत में मौर्यवंशीय राजाओं का भी उल्लेख किया है। सुंगयुन 518 ई. में भारत आया था। उसने मौर्यकालीन इतिहास के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दी हैं। मौर्य शासक अशोक ने बहुत से स्तूपों आदि का निर्माण कराया था। ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत में इस बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

❑

कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

• सर विलियम जोन्स ने सर्वप्रथम यह प्रमाणित किया था कि चंद्रगुप्त मौर्यही यूनानी साहित्य में वर्णित सैंड्रोकोटस अथवा एंड्रोकोटस है।

—एशियाटिक स्सिचैज, 4, पृ. 11

• भारत के राजनीतिक व्योम पर चंद्रगुप्त मौर्य के रूप में एक उदीयमान प्रकाशपूर्ण नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने भारतीयों का नेता व राजा बनकर उत्तर-पश्चिमी भारत के सिकंदर के यूनानी सैनिक गढ़ों और यवन क्षत्रपों को नष्ट-भ्रष्ट किया। उसने भारत के उस भूभाग को विदेशी परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया तथा 'अधार्मिक' नंद वंश के शूद्र राजा को उन्मूलित कर मगध में अपने नए राजवंश की स्थापना की, जो भारतीय इतिहास में मौर्य वंश के नाम से सुविख्यात है।

• मौर्यों का आगमन इतिहासकारों के लिए अंधकार से प्रकाश की ओर का मार्ग प्रशस्त करता है। कालक्रम भी सहसा निश्चित एवं स्पष्ट होने लगता है तथा भारत के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य का उदय होता है। —वी.ए. स्मिथ

• 'मुद्राराक्षस' में नंद राजाओं को उच्च कुलीय क्षत्रिय माना है, जबकि यह सर्वविदित है कि नंद निम्न वर्ग से संबंध रखते थे। यूनानी लेखकों ने नंद को शूद्र बताया है। कर्टियस ने लिखा है—नंद राजा नीच कुल का था, क्योंकि उसका पिता एक नाई था।

• डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है—'मुद्राराक्षस' नाटक के पक्षपात अथवा पूर्वग्रह को इतिहास नहीं माना जा सकता और न ही एक ऐसे नाटक को, जो चंद्रगुप्त के समय के लगभग 800 वर्ष बाद लिखा गया हो, इतिहास के स्रोत के रूप में पुराणों से अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है।

• टीकाकार का यह विचार कि 'मूरा' शब्द से 'मौर्य' शब्द की उत्पत्ति हुई, यह उचित नहीं है। पाणिनि की व्याकरण के अनुसार, 'मूरा' शब्द से 'मौर्य' शब्द की उत्पत्ति नहीं हो सकती। मूरा से जो विशेषण बनेगा, वह 'मौरेय' होगा, मौर्य नहीं।

• मौर्यों को शूद्र माननेवालों के विरुद्ध सबसे प्रबल एवं प्रामाणिक स्रोत चाणक्य रचित 'अर्थशास्त्र' है। 'अर्थशास्त्र' के अंत में कहा गया है—अर्थशास्त्र का संकलन एक ऐसे व्यक्ति ने किया, जिसने मातृभूमि को, उसकी संस्कृति और उसके ज्ञान को, उसकी सैनिक शक्ति को नंद वंशीय राजाओं के चंगुल से बलपूर्वक तथा शीघ्र मुक्त कराया।

• 'महाबोधिवंश' से भी मौर्यों का क्षत्रिय होना ज्ञात होता है। इस ग्रंथ के अनुसार, कुमार चंद्रगुप्त, जिसका जन्म राजाओं के कुल में हुआ था, चाणक्य नामक ब्राह्मण की सहायता से पाटलिपुत्र का राजा बना।

• कहा जाता है कि जब सिकंदर ने कुपित होकर चंद्रगुप्त को मृत्युदंड देने का आदेश दिया था, चंद्रगुप्त किसी प्रकार वहाँ से जान बचाकर भाग गया। जब वह थककर एक स्थान पर निद्रामग्न था, तभी एक विशालकाय सिंह ने आकर उसके शरीर से बहते हुए पसीने को अपनी जीभ से पोंछा था। जब चंद्रगुप्त की नींद टूटी तो सिंह चुपचाप वहाँ से चला गया। चंद्रगुप्त ने इस घटना को शुभ संकेत माना तथा इसके बाद राज्य प्राप्त करने की उसकी इच्छा तीव्र हो गई।

• जिस सेना के बल पर चंद्रगुप्त ने घननंद को परास्त किया था, उसका मूल आधार पंजाब से भरती किए गए सैनिकों पर था। —रीज डेविड्स

• प्लूटार्क के अनुसार—कुछ ही समय पश्चात् सेल्यूकस को सैंड्रोकोटस (चंद्रगुप्त) ने 500 हाथी भेंट किए और 6 लाख सैनिक लेकर उसने भारत विजय प्रारंभ की।

• 2000 वर्ष से भी पूर्व भारत के प्रथम सम्राट् ने उस प्राकृतिक सीमा को प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ ही आहें भरते रहे और जिसे सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दियों के मुगल सम्राट् भी कभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सके। —वी.ए. स्मिथ

• इतिहासकार तारानाथ के अनुसार—चाणक्य चंद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहा तथा वह बिंदुसार का भी मंत्री था। चाणक्य ने सोलह नगरों के सामंतों तथा राजाओं को परास्त किया तथा बिंदुसार को पूर्वी व पश्चिमी समुद्रों के बीच के समस्त प्रदेश का स्वामी बना दिया।

• डॉ. वी.ए. स्मिथ और डॉ. आयंगर के अनुसार—दक्षिण भारत पर चंद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की थी, बिंदुसार ने नहीं। दक्षिण भारत पर चंद्रगुप्त का आधिपत्य होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं—

1. प्लूटार्क ने लिखा है—चंद्रगुप्त 6 लाख सैनिकों की सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ा और उसने संपूर्ण देश पर विजय प्राप्त की।

2. बौद्ध साहित्य से पुष्टि होती है कि दक्षिणी भारत पर चंद्रगुप्त ने ही विजय प्राप्त की थी। बौद्ध ग्रंथ 'महावंश' में चंद्रगुप्त को संपूर्ण जंबूद्वीप का एकच्छत्र सम्राट् कहा गया।

3. 'मुद्राराक्षस' में चंद्रगुप्त को हिमालय से दक्षिणी समुद्र तट तक सभी राजाओं का आश्रयदाता कहा गया।

4. अभिलेखों से भी चंद्रगुप्त की दक्षिण विजय की पुष्टि होती है। अशोक के अभिलेखों से भी यही निष्कर्ष निकलता है। सेरिंगापट्टम व श्रवणबेलगोला के अभिलेख भी चंद्रगुप्त की दक्षिण विजय को प्रमाणित करते हैं।

5. अभिलेखों के अतिरिक्त स्मारकों से भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। श्रवणबेलगोला में एक छोटी सी पहाड़ी का नाम चंद्रगिरि है, क्योंकि चंद्रगुप्त ने वहाँ तपस्या की थी। उसी पर्वत पर एक प्राचीन मंदिर है, जिसका नाम चंद्रगुप्त वसदि है। कहा जाता है कि चंद्रगुप्त ने उसका निर्माण करवाया था।

6. तमिल रचनाओं से भी चंद्रगुप्त की दक्षिण विजय के विषय में जानकारी मिलती है। तमिल कवियों मामूलनार, कल्लित आत्तिरयनार व परंगोर्नार की रचनाओं में वर्णन है कि चंद्रगुप्त ने स्थानीय मित्रों, कोशरों तथा बहु वदुकरों की सहायता से दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। चंद्रगुप्त ने इस अभियान में संभवत: मैसूर तक के प्रदेशों को अपने आधिपत्य में कर लिया था।

7. जैन ग्रंथों 'बृहत्कथाकोष' (हरिषेण कृत), 'भद्रबाहु चरित' (रत्ननंदि कृत) व 'राजवलीकथे' नामक कन्नड़ ग्रंथों से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र में दुर्भिक्ष पड़ने पर जैन मुनि भद्रबाहु ने जैन मतानुयायियों के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था। पाटलिपुत्र का राजा चंद्रगुप्त भी शासन का भार अपने पुत्र को सौंपकर भद्रबाहु का शिष्य बनकर उनके साथ श्रवणबेलगोला चला गया था। वहीं तपस्या करते हुए चंद्रगुप्त ने अपने प्राण-त्याग दिए।

• **यवनराज के क्षत्रप फिलिप की मृत्यु—**आचार्य चाणक्य ने फिलिप को फँसाने की अनोखी चाल चली। चंद्रगुप्त का वेश बदलकर उसके नेतृत्व में सुंदर वीरांगनाओं को क्षत्रप फिलिप के महल में भेजा गया। हालाँकि वे वीरांगनाएँ सुंदर होने के साथ युद्ध-कौशल में भी निपुण थीं। चंद्रगुप्त ने महल के द्वार पर जाकर खुद को सुंदरियों का सौदागर बताया। सुंदरियों की बात सुनकर क्षत्रप फिलिप स्वयं द्वार तक चला आया। उसने चंद्रगुप्त से उनकी खूबियों के बारे में पूछा तो चंद्रगुप्त ने जवाब दिया कि सुंदर होने के साथ-साथ ये पाक कला, तलवारबाजी आदि में निपुण हैं ही, अच्छी नृत्यांगना भी हैं। फिलिप घूरते-घूरते एक नृत्यांगना के पास आया और नृत्य करने के लिए कहा। उसका नृत्य देखकर फिलिप सहित सभी दरबारी और मंत्रीगण हैरान थे। लग रहा था मानो उस नृत्यांगना के रग-रग में बिजली दौड़ रही हो। चंद्रगुप्त ने फिलिप से कहा कि यह नृत्यांगना तलवार नृत्य में भी निपुण है। इस पर फिलिप ने नृत्यांगना के हाथ में अपनी तलवार थमा दी। वह नृत्यांगना नृत्य करते-करते फिलिप के सामने से गुजरी

और बिजली के झटके की तरह उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। फिलिप का सिर-धड़ जमीन पर लोटने लगा। फिलिप के सैनिकों को वश में कर लिया गया। पूरे राजमहल पर चंद्रगुप्त ने अपना अधिकार जमा लिया। इस तरह चाणक्य का षड्यंत्र भी सफल रहा।

मौर्यों ने कुल १३९ वर्षों तक शासन किया

1. चंद्रगुप्त मौर्य ई.पू. 317 से 293 24 वर्ष
2. बिंदुसार ई.पू. 293 से 268 25 वर्ष
3. अशोक ई.पू. 268 से 232 36 वर्ष
4. दशरथ ई.पू. 234 से 224 10 वर्ष
5. संप्रति ई.पू. 224 से 215 09 वर्ष
6. शालिशुक ई.पू. 215 से 202 13 वर्ष
7. देववर्मन ई.पू. 202 से 195 07 वर्ष
8. सातवाहन ई.पू. 195 से 187 08 वर्ष
9. बृहद्रथ ई.पू. 187 से 180 07 वर्ष

कुल ई.पू. 317 से 180 139 वर्ष

दशरथ और संप्रति का उल्लेख मत्स्यपुराण और वायुपुराण में है। वायुपुराण के अनुसार, संप्रति का उत्तराधिकारी शालिशुक था। वायुपुराण में ही वर्णित है कि शालिशुक का पुत्र देववर्मन था और देववर्मन का पुत्र सातवाहन था। सभी पुराणों से स्पष्ट होता है कि मौर्य वंश का अंतिम शासक बृहद्रथ था।

❑

मौर्यकालीन शब्दावली/पद

शुल्काध्यक्ष : विभिन्न प्रकार के व्यवसाय एवं व्यापार से संबंध रखनेवाले। इसका मुख्य काम शुल्क एकत्रित करना था।

समहर्ता : राजकीय कर एकत्रित करना मुख्य काम था। उसके अधीन अनेक अध्यक्ष होते थे, जो अपने-अपने विभाग का राजकीय कर एकत्रित करते थे। इनके अंतर्गत सभी अध्यक्ष आते थे।

पौतवाध्यक्ष : इसका काम तौल-माप के परिमाणों पर नियंत्रण रखना था।

मानाध्यक्ष : देश और काल को मापने के साधनों का नियंत्रण इसके हाथ में था।

सूत्राध्यक्ष : कताई-बुनाई आदि व्यवसायों का नियंत्रण इसके अंतर्गत था।

सीताध्यक्ष : ये राज्य के कृषि विभाग के अध्यक्ष होते थे।

सुराध्यक्ष : शराब के उत्पादन, वितरण और प्रयोग पर नियंत्रण रखना इनका मुख्य कार्य था।

सूनाध्यक्ष : बूचड़खाने का नियंत्रण इनके अधीन था।

गणिकाध्यक्ष : वेश्याओं का नियंत्रण इस विभाग के अंतर्गत था।

मुद्राध्यक्ष : देश से बाहर जाने के लिए राजकीय मुद्रा (मुहर) प्राप्त करना आवश्यक था। यह कार्य इन्हीं के अधीन था।

विवीताध्यक्ष : चरागाहों का नियंत्रण इन्हीं के अधीन था।

नौ-अध्यक्ष : जल मार्गों का प्रबंध करना इनका काम था।

गो-अध्यक्ष : राजकीय मवेशियों का प्रबंध एवं नियंत्रण इन्हीं अधिकारियों के अंतर्गत था।

अश्वाध्यक्ष : घोड़ों से संबद्ध सभी कार्य इन्हीं अधिकारियों के अधीन थे।

हस्त्याध्यक्ष : हाथियों से जुड़ी सभी व्यवस्था इनके अधीन थी।

कृप्याध्यक्ष : इनका कार्य था जंगलों में उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थों को एकत्रित कराकर उन्हें कारखानों में भिजवाना।

पण्याध्यक्ष : ये व्यापार पर नियंत्रण रखते थे।

लक्षणाध्यक्ष : संपूर्ण मुद्रा प्रणाली इनके अधीन थी।

अकराध्यक्ष : खानों का नियंत्रण इनके अधीन था।

देवताध्यक्ष : पूजा-पाठ कराना और मंदिरों का प्रबंधन इनके अधीन था।

सौवर्णिक : टकसाल के अध्यक्ष को सौवर्णिक कहा जाता था।

सन्निधाता : राजकीय आय-व्यय का हिसाब रखता था। राजकोष विभाग सन्निधाता के अधीन होता था।

नायक : सेना का मुख्य संचालक नायक कहलाता था।

प्रशास्ता : राजशासन अथवा राजाज्ञाएँ लिपिबद्ध करनेवाला अधिकारी प्रशास्ता कहलाता था।

अक्षपटल : प्रशास्ता के कार्यालय को 'अक्ष पटल' कहा जाता था।

दौवारिक : राजप्रासाद का प्रधान अधिकारी 'दौवारिक' कहलाता था।

आंतर्वंशिक : राजा की निजी अंगरक्षक सेना के अध्यक्ष को आंतर्वंशिक कहा जाता था।

अमात्य : मंत्रिपरिषद् के सदस्य अमात्य कहलाते थे।

दुर्ग : नगरों से होनेवाली विभिन्न प्रकार की आय को दुर्ग कहा जाता था।

राष्ट्र : देहात या जनपद से प्राप्त आमदनी को राष्ट्र कहते थे।

खनि : खनिज पदार्थों से प्राप्त आय। सेतु पुष्पों, फूलों के उद्यानों और सब्जी के खेतों से प्राप्त आय।
वन : जंगलों से प्राप्त आय।
व्रज : मवेशियों से प्राप्त आय।
वणिक पथ : जल मार्ग और स्थल मार्ग से प्राप्त आय।

मौर्य साम्राज्य के पाँच चक्र

1. उत्तरापथ : इसमें कंबोज, गंधार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि प्रदेश थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।
2. पश्चिमी चक्र : इसमें काठियावाड़-गुजरात से लेकर राजपूताना-मालवा आदि के प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।
3. दक्षिणापथ : विंध्याचल का सारा प्रदेश इस चक्र में था। इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।
4. कलिंग : इसकी राजधानी तोसाली थी।
5. मध्य देश : इसमें वर्तमान बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

कुमार : इन पाँच चक्रों का शासन करने के लिए राजकुल के व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था, जिन्हें कुमार कहते थे।
महामात्य : पाँच चक्रों के अधीन छोटे शासन या मंडल होते थे, जिनमें कुमार के अधीन महामात्य होते थे।

❑

चंद्रगुप्त का राजप्रासाद

मेगस्थनीज के अनुसार, पाटलिपुत्र में चंद्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद था। उन्होंने लिखा है—यह संसार के राजकीय भवनों में सबसे सुंदर है। इस प्रासाद के स्तंभों पर स्वर्णिम अंगूरी लताएँ हैं, जिन पर चाँदी की चिड़ियों को कल्लोल करते दरशाया गया है। प्रासाद के पास मछलियों के लिए सरोवर बने हैं, जिनकी शोभा को बढ़ाने के लिए कई सजावटी वृक्ष, कुंज तथा झाड़ियाँ लगा दी गई हैं।

मेगस्थनीज ने लिखा है—गंगा तथा सोन नदी के संगम पर पाटलिपुत्र नगर बसा है। इस नगर की लंबाई 80 स्टेडिया (8 मील) और चौड़ाई 15 स्टेडिया (1.5 मील) है। इसका आकार समानांतर चतुर्भुज के समान है। यह नगर चारों ओर से काठ की दीवार से घिरा है। इन दीवारों पर तीर चलाने के लिए छेद बने हैं। यह नगर चारों ओर से 600 फीट चौड़ी व 60 फीट गहरी खाई से घिरा है। इस पर 570 बुर्ज और 64 दरवाजे हैं।

❑

भारतीय इतिहास : महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

ईसा पूर्व

3000-1500 सिंधु घाटी सभ्यता

576 गौतम बुद्ध का जन्म

527 महावीर का जन्म

327-326 भारत पर सिकंदर का हमला। उसने भारत और यूरोप के बीच एक भू-मार्ग खोल दिया।

313 जैन परंपरा के अनुसार चंद्रगुप्त का राज्याभिषेक

305 चंद्रगुप्त मौर्य के हाथों सेल्यूकस की पराजय

273-232 अशोक का शासन

261 कलिंग की विजय

230-199 सातवाहन साम्राज्य*

240-60 कुषाण साम्राज्य*

58 विक्रम संवत् का आरंभ।

ईसवी सन

78 : शक संवत् का आरंभ।

120 : कनिष्क का राज्याभिषेक।

320 : गुप्त युग का आरंभ, हिंदू भारत का स्वर्णिम काल।

380 : विक्रमादित्य का राज्याभिषेक।

405-411 : चीनी यात्री फाह्यान की भारत यात्रा।

415 : कुमार गुप्त-1 का राज्याभिषेक।

455 : स्कंदगुप्त का राज्याभिषेक।

606-647 : हर्षवर्धन का शासन।

712 : सिंध पर पहला अरब आक्रमण।

836 : कन्नौज के भोज राजा का राज्याभिषेक।

985 : चोल शासक राजराजा का राज्याभिषेक।

998 : सुल्तान महमूद का राज्याभिषेक।

1001 : महमूद गजनवी द्वारा भारत पर पहला आक्रमण, जिसने पंजाब के शासक जयपाल को हराया था।

1025 : महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मंदिर का विध्वंस।

1191 : तराइन का पहला युद्ध।

1192 : तराइन का दूसरा युद्ध।

1206 : दिल्ली की गद्दी पर कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्याभिषेक।

1210 : कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु।

1221 : भारत पर चंगेज खान का हमला (मंगोल आक्रमण)।

1236 : दिल्ली की गद्दी पर रजिया सुल्तान का राज्याभिषेक।

1240 : रजिया सुल्तान की मृत्यु।

1296 : अलाउद्दीन खिलजी का हमला।
1316 : अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु।
1325 : मुहम्मद तुगलक का राज्याभिषेक।
1327 : तुगलकों द्वारा दिल्ली से दौलताबाद और फिर दक्कन को राजधानी बनाया जाना।
1336 : दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना।
1351 : फिरोजशाह का राज्याभिषेक।
1398 : तैमूर लंग द्वारा भारत पर हमला।
1469 : गुरु नानक का जन्म।
1494 : फरगना में बाबर का राज्याभिषेक।
1497-98 : वास्को-डि-गामा की भारत की पहली यात्रा। केप ऑफ गुड होप के जरिए भारत तक समुद्री रास्ते की खोज।
1526 : पानीपत की पहली लड़ाई। बाबर ने इब्राहीम लोदी को हराया। बाबर द्वारा मुगल शासन की स्थापना।
1527 : खानवा की लड़ाई, बाबर ने राणा साँगा को हराया।
1530 : बाबर की मृत्यु और हुमायूँ का राज्याभिषेक।
1539 : शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को हराया और भारत का सम्राट् बन गया।
1540 : कन्नौज की लड़ाई।
1555 : हुमायूँ ने दिल्ली की गद्दी को फिर से हथिया लिया।
1556 : पानीपत की दूसरी लड़ाई।
1565 : तालीकोट की लड़ाई।
1576 : हल्दीघाटी की लड़ाई—राणा प्रताप ने अकबर को हराया।
1582 : अकबर द्वारा दीन-ए-इलाही पंथ की स्थापना।
1597 : राणा प्रताप की मृत्यु।
1600 : ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना।
1605 : अकबर की मृत्यु और जहाँगीर का राज्याभिषेक।
1606 : गुरु अर्जुनदेव का वध।
1611 : नूरजहाँ से जहाँगीर का विवाह।
1616 : सर थॉमस रो ने जहाँगीर से मुलाकात की।
1627 : शिवाजी का जन्म और जहाँगीर की मृत्यु।
1628 : शाहजहाँ भारत का सम्राट् बना।
1631 : मुमताज महल की मृत्यु।
1634 : भारत के बंगाल में अंग्रेजों को व्यापार करने की अनुमति दे दी गई।
1659 : औरंगजेब का राज्याभिषेक, शाहजहाँ को कैद।
1665 : औरंगजेब द्वारा शिवाजी को कैद।
1666 : शिवाजी की मृत्यु।
1707 : औरंगजेब की मृत्यु।

1708 : गुरु गोविंद सिंह की मृत्यु।
1739 : नादिरशाह का भारत पर हमला।
1757 : प्लासी की लड़ाई। लॉर्ड क्लाइव के हाथों भारत में अंग्रेजों के राजनीतिक शासन की स्थापना।
1761 : पानीपत की तीसरी लड़ाई, शाह आलम द्वितीय भारत का सम्राट् बना।
1764 : बक्सर की लड़ाई।
1765 : क्लाइव को भारत में कंपनी का गवर्नर नियुक्त किया गया।
1767-69 : पहला मैसूर युद्ध।
1770 : बंगाल का महान् अकाल।
1780 : महाराजा रणजीत सिंह का जन्म।
1780-84 : दूसरा मैसूर युद्ध।
1784 : पिट्स अधिनियम।
1793 : बंगाल में स्थायी बंदोबस्त।
1799 : चौथा मैसूर युद्ध, टीपू सुल्तान की मृत्यु।
1802 : बेसेन की संधि।
1809 : अमृतसर की संधि।
1829 : सती प्रथा को प्रतिबंधित किया गया।
1830 : ब्राह्म समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय की इंग्लैंड यात्रा।
1833 : राजा राम मोहन राय की मृत्यु।
1839 : महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु।
1839-42 : पहला अफगान युद्ध।
1845-46 : पहला अंग्रेज-सिक्ख युद्ध।
1852 : दूसरा अंग्रेज-बर्मा युद्ध।
1853 : बांबे से ठाणे के बीच पहली रेल चली और कलकत्ता में टेलीग्राफ लाइन खोली गई।
1857 : सिपाही विद्रोह या स्वतंत्रता का पहला संग्राम।
1861 : रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म।
1869 : महात्मा गांधी का जन्म।
1885 : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।
1889 : जवाहरलाल नेहरू का जन्म।
1897 : सुभाषचंद्र बोस का जन्म।
1905 : लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल का पहला बँटवारा।
1906 : मुसलिम लीग की स्थापना।
1911 : दिल्ली दरबार—ब्रिटिश राजा और रानी की भारत यात्रा। दिल्ली भारत की राजधानी बनी।
1916 : पहले विश्व युद्ध की शुरुआत।
1916 : मुसलिम लीग और कांग्रेस द्वारा लखनऊ समझौते पर हस्ताक्षर।
1918 : पहले विश्व युद्ध की समाप्ति।

1919 : मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार। अमृतसर में जलियाँवाला बाग हत्याकांड।
1920 : खिलाफत आंदोलन की शुरुआत।
1927 : साइमन कमीशन का बहिष्कार, भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत।
1928 : पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की मृत्यु ।
1929 : लॉर्ड ऑर्वम समझौता। लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास।
1930 : सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत। महात्मा गांधी द्वारा दांडी मार्च (6 अप्रैल, 1930)।
1931 : गांधी-इर्विन समझौता।
1935 : भारत सरकार अधिनियम पारित।
1937 : प्रांतीय स्वायत्तता, कांग्रेसी मंत्रियों का पद ग्रहण।
1941 : रवींद्रनाथ टैगोर की मृत्यु, भारत से सुभाषचंद्र बोस का पलायन।
1942 : क्रिप्स मिशन के भारत आगमन पर भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत।
1943-44 : नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज की स्थापना की और बंगाल में अकाल।
1945 : लाल किले में आई.एन.ए. का ट्रायल, शिमला समझौता और द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति।
1946 : ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की भारत यात्रा। केंद्र में अंतरिम सरकार का गठन।
1947 : भारत का विभाजन।
1948 : महात्मा गांधी पर हमला (30 जनवरी)। देशी रियासतों का भारतीय गणराज्य में विलय।
1949 : कश्मीर पर युद्ध-विराम, भारतीय संविधान पर हस्ताक्षर और उसे अपनाया गया।
1950 : भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य बना (26 जनवरी) और भारतीय संविधान लागू हुआ।
1951 : पहली पंचवर्षीय योजना। पहले एशियाई खेल दिल्ली में हुए।
1952 : लोकसभा का पहला आम चुनाव।
1953 : तेनजिंग नॉर्गे और सर एडमंड हिलेरी की एवरेस्ट पर फतह।
1956 : दूसरी पंचवर्षीय योजना की शुरुआत।
1957 : दूसरे आम चुनाव। गोवा की आजादी।
1962 : तीसरे आम चुनाव। भारत पर चीन का आक्रमण।
1963 : नगालैंड 16वाँ भारतीय राज्य बना।
1964 : पं. जवाहरलाल नेहरू का निधन।
1965 : पाकिस्तान का भारत पर हमला।
1966 : ताशकंद समझौता। लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु। इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री चुनी गईं।
1967 : चौथा आम चुनाव—डॉ. जाकिर हुसैन भारत के तीसरे राष्ट्रपति चुने गए।
1969 : वी.वी. गिरि को भारत का राष्ट्रपति चुना गया। अध्यादेश द्वारा बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण।
1970 : मेघालय को एक अलग राज्य का दर्जा।
1971 : हिमाचल प्रदेश राज्य बना। भारत-पाकिस्तान युद्ध। बँगलादेश का अस्तित्व में आना।
1972 : शिमला समझौता, सी. राजगोपालाचारी की मृत्यु।
1973 : मैसूर रियासत का नाम कर्नाटक रखा गया।
1974 : भारत ने परमाणु परीक्षण किया। फखरुद्दीन अली अहमद पाँचवें राष्ट्रपति चुने गए, सिक्किम का भारत में

विलय।

1975 : भारत ने 'आर्यभट' का प्रक्षेपण किया। सिक्किम भारतीय गणराज्य का 22वाँ राज्य बना। आपातकाल की घोषणा।

1976 : भारत और चीन ने कूटनीतिक संबंध स्थापित किए।

1977 : छठे आम चुनाव। जनता पार्टी को लोकसभा में बहुमत मिला। नीलम संजीव रेड्डी भारत के छठे राष्ट्रपति चुने गए।

1979 : मोरारजी देसाई ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दिया। चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बने। 20 अगस्त को चौ. चरण सिंह ने इस्तीफा दिया। छठी लोकसभा भंग।

1980 : सातवें आम चुनाव। कांग्रेस सत्ता में आई। इंदिरा गांधी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। संजय गांधी की हवाई दुर्घटना में मृत्यु। भारत ने 'रोहिणी' उपग्रह को ले जानेवाले एस.एल.वी.-3 का प्रक्षेपण किया।

1982 : एशिया का सबसे लंबा पुल खुला (2 मार्च)। आचार्य जे.बी. कृपलानी की मृत्यु (19 मार्च)। इनसेट 1ए का प्रक्षेपण। ज्ञानी जैल सिंह भारत के राष्ट्रपति चुने गए (15 जुलाई)। गुजरात में आए चक्रवात में 500 से अधिक लोग मारे गए (नवंबर 5)। आचार्य विनोबा भावे की मृत्यु (15 नवंबर)। नौवें एशियाई खेलों का उद्घाटन (10 नवंबर)।

1983 : नई दिल्ली में चोगम सम्मेलन।

1984 : पंजाब में ऑपरेशन ब्लू स्टार। राकेश शर्मा अंतरिक्ष में गए। इंदिरा गांधी की हत्या। राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने।

1985 : राजीव-लोंगोवाल संधि पर हस्ताक्षर। संत एच.एस. लोंगोवाल की पंजाब के चुनाव के दौरान हत्या। असम संधि। सातवीं पंचवर्षीय योजना शुरू।

1986 : मिजोरम संधि।

1987 : आर. वेंकटरमन राष्ट्रपति चुने गए। डॉ. शंकर दयाल शर्मा उपराष्ट्रपति चुने गए। बोफोर्स और फेयरफेक्स कांड।

1989 : अयोध्या में श्रीराम शिलान्यास पूजा, भारत की पहली मिसाइल 'अग्नि' का उड़ीसा से 22 मई को प्रक्षेपण। 5 जून को 'त्रिशूल' मिसाइल परीक्षण। 27 सितंबर को 'पृथ्वी' का दूसरा सफलतापूर्वक प्रक्षेपण। राजीव सरकार को चुनावों में शिकस्त। उन्होंने 29 नवंबर को इस्तीफा दिया। 29 नवंबर से जवाहर रोजगार योजना की शुरुआत। 2 दिसंबर को राष्ट्रीय मोर्चा के नेता वी.पी. सिंह ने सातवें प्रधानमंत्री के तौर पर शपथ ली और नौवीं लोकसभा के लिए नई कैबिनेट का गठन।

1990 : 25 मार्च को आई.पी.के.एफ. के शेष सैनिकों की वापसी। 14 फरवरी को इंडियन एयरलाइंस ए-320 दुर्घटनाग्रस्त। जनता दल विभाजित, भाजपा ने सरकार से अपना समर्थन वापस लिया। भाजपा नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी ने रथयात्रा निकाली और गिरफ्तार हुए। मंडल आयोग की सिफारिशों को वी.पी. सिंह द्वारा लागू किए जाने की घोषणा। अयोध्या में रामजन्म भूमि-बाबरी मसजिद विवाद के चलते हिंसा।

1991 : 17 जनवरी को खाड़ी युद्ध की शुरुआत। 21 मई को राजीव गांधी की हत्या। 20 जून को 10वीं लोकसभा का गठन। पी.वी. नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री बने।

1992 : भारत ने 29 जनवरी को इजराइल के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित किए। 23 अप्रैल को भारत रत्न और ऑस्कर विजेता सत्यजीत रे की मृत्यु। 25 जुलाई को डॉ. शंकर दयाल शर्मा राष्ट्रपति चुने गए। पहली स्वदेश निर्मित

पनडुब्बी 'आई.एन.एस. शक्ति' का 7 फरवरी को लोकार्पण।

1993 : 7 जनवरी को अयोध्या में 67.33 एकड़ जमीन को अधिग्रहण करने का अध्यादेश। भाजपा की रैली में भारी सुरक्षा। बंबई में बम धमाकों में 300 लोगों की मौत। इनसेट-2बी पूरी तरह काम करने को तैयार। महाराष्ट्र में भूकंप।

1994 : नागरिक विमानन पर सरकार का एकाधिकार खत्म। गैट समझौते पर विवाद। प्लेग महामारी। सुष्मिता सेन मिस यूनिवर्स, ऐश्वर्या राय मिस वर्ल्ड बनीं।

1995 : मायावती उत्तर प्रदेश की पहली दलित मुख्यमंत्री बनीं। महाराष्ट्र व गुजरात में भाजपा, कर्नाटक में जनता दल और उड़ीसा में कांग्रेस सत्ता में आई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) का गठन। मायावती सरकार के गिरने के बाद उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू। इनसेट 2सी और आई.आर.एस.आई.-सी का प्रक्षेपण।

1996 : कई केंद्रीय मंत्री और विपक्ष के नेता हवाला कांड में फँसे। 21 मार्च को पी.एस.एल.वी. डी3 के साथ आई.आर.एस.पी.-3 के प्रक्षेपण से भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के नए युग की शुरुआत। ग्यारहवीं लोकसभा के लिए अप्रैल में चुनाव। 127 सीटों के साथ भाजपा इकलौती बड़ी पार्टी के रूप में सामने उभरी।

1997 : 15 अगस्त को भारत ने अपनी आजादी की 50वीं वर्षगाँठ मनाई।

1998 : मदर टेरेसा की मृत्यु। अटल बिहारी वाजपेयी भारत के प्रधानमंत्री बने। भारत ने अपना दूसरा परमाणु परीक्षण किया।

1999 : जून में फ्लाइट लेफ्टिनेंट के. नचिकेता पाकिस्तान द्वारा आठ दिनों की कैद के बाद रिहा। जम्मू व कश्मीर के करगिल क्षेत्र में एल.ओ.सी. के भीतर पाकिस्तानी सेना को हटाने के लिए भारतीय सेना ने 'ऑपरेशन विजय' चलाया। भारत लड़ाई में विजयी हुआ। 24 दिसंबर 1999 को इंडियन एयरलाइंस के हवाई जहाज आई.सी.-814 का आतंकवादियों द्वारा अपहरण कर अफगानिस्तान : कंधार ले जाना। यात्रियों को बंधक बना लिये जाने के बाद उनकी रिहाई के लिए भारत सरकार द्वारा तीन आतंकवादियों को छोड़ा गया।

2000 : अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन मार्च में भारत की यात्रा पर आए। तीन नए राज्य छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, झारखंड अस्तित्व में आए। भारत की जनसंख्या 1 अरब का आँकड़ा पार कर गई।

2001 : मार्च में भारत की छठी जनगणना। अप्रैल में जी.एस.एल.वी. का सफल प्रक्षेपण। जुलाई में भारत और पाकिस्तान के बीच 'आगरा सम्मेलन'। गुजरात का भूकंप भारत की सबसे बड़ी प्राकृतिक आपदा। तहलका.कॉम ने वीडियो टेप जारी किया, जिसमें हथियारों की खरीद-फरोख्त में भारतीय सैन्य अधिकारियों, मंत्रियों और नेताओं की पोल खोली गई। अगस्त 2001 में एनरॉन का भारत से जाना। पी.एस.एल.वी.-सी 3 का अक्तूबर में प्रक्षेपण।

2002 : 71 वर्षीय मिसाइल वैज्ञानिक डॉ. ए.पी.जे. अबुल कलाम भारत के राष्ट्रपति बने। गुजरात में 27 फरवरी को हुए गोधरा कांड के बाद सबसे भयंकर सांप्रदायिक दंगे। राष्ट्रीय जल नीति की घोषणा, जिसका उद्देश्य सभी जल संसाधनों का एकीकरण और प्रबंधन है, ताकि उनकी क्षमता का अधिकतम सतत उपभोग किया जा सके।

2003 : भारत द्वारा न्यूक्लियर कमांड अथॉरिटी (एन.सी.ए.) और स्ट्रेटेजिक फोर्सेज कमांड (एस.एफ.ओ.) का गठन। एयर मार्शल तेज मोहन अस्थाना एस.एफ.सी. के पहले मुख्य कमांडर बने। अत्याधुनिक बहुद्देशीय इनसेट-3ए का फ्रेंच गुयाना के कोरू से अंतरिक्ष में सफल प्रक्षेपण। सफेदपोशों के अपराधों से निपटने के लिए सी.बी.आई. ने जून में इकोनॉमिक इंटेलीजेंस शाखा बनाई। दिसंबर में फ्रेंच गुयाना के कोरू के स्पेसपोर्ट से भारत का अत्याधुनिक संचार सेटेलाइट इनसेट-3ई यूरोपियन रॉकेट से प्रक्षेपित किया गया।

2004 : सुनामी के कहर से दक्षिण भारत के राज्यों में भीषण तबाही। 35 हजार लोगों की मौत। राज्यवर्धन सिंह

राठौर ने एथेंस ओलंपिक की निशानेबाजी स्पर्धा में भारत के लिए पहला व्यक्तिगत रजत जीता।

2005 : जम्मू व कश्मीर में प्रलंयकारी भूकंप में हजारों लोगों की मौत। लाखों बेघर।

2006 : मुंबई में शृंखलाबद्ध बम धमाके। सैकड़ों की मौत।

2007 : प्रतिभा देवी सिंह पाटिल देश की पहली महिला राष्ट्रपति बनीं। अमेरिका के साथ महत्त्वपूर्ण परमाणु करार। देश ने पूरे किए आजादी के 60 साल।

2008 : जुलाई में अहमदाबाद में शृंखलाबद्ध बम धमाकों में 49 लोगों की मौत।

2009 : दिल्ली उच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को कानूनी मान्यता प्रदान की।

2010 : फरवरी में जर्मन बेकरी, पुणे में बम विस्फोट में 16 लोग मारे गए। सितंबर में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अयोध्या विवादित राम जन्मभूमि का संबंधित पक्षों में वितरण का निर्णय सुनाया।

2011 : अगस्त में समाज-सेवी अन्ना हजारे ने लोकपाल कानून के समर्थन में दिल्ली में 12 दिन की भूख हड़ताल की।

2012 : जनवरी—सलमान रुश्दी की जयपुर यात्रा कुछ संगठनों के विरोध के चलते टली।

❑

संदर्भ ग्रंथ

1. चंद्रगुप्त मौर्य—पी.एल. भार्गव।
2. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास—राधाकृष्ण चौधरी।
3. भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास—डॉ. ए.के. मित्तल व अन्य।
4. http://abtaknyay.com/dharm_news.php?id=36
5. *hindi.webdunia.com*
6. www.definition-of.net/
7. http://sagargsm.com/showthread.php?t=952&page=3
8. *samoseyindia.com/01hindi/story3.html*
9. http://shantnukumar.mywebdunia.com/2012/05/03/1336013040000.html
10. http://in.jagran.yahoo.com/news/national/general/5_1_6553817.html
11. http://shatayu.mywebdunia.com/2008/08/28/1219912560000.html
12. https://groups.google.com/forum/#!msg/aajsamaj/YBovF5hOnnM/cM7IQXVkKsoJ
13. http://dainiktribuneonline.com
14. http://vimitihas.wordpress.com/2009/02/14/pracinbharatkijhalak/
15. http://www.indg.in/primary-education/j
16. http://www.wikipedia.org/

❑❑❑

Notes

[←1]
ड्रैक्का—यूनान की मुद्रा इकाई।

[←2]

स्टर्लिंग—ब्रिटेन की मुद्रा (मैक क्रिंडले की 'एंसिएंट इंडिया मेगस्थनीज एंड आर्यन' पुस्तक से)।